श्रीधन्वन्तरि ग्रन्थावली नं० ९

क्षयादर्श

अर्थात्

क्षयरोग और उस की चिकित्सा



जिसमें क्षय सम्बन्धी नवीन और प्राचीन
विचारों का सविस्तार वर्णन है।

लेखकः—

**पंडित हरिशंकर जी शर्म्मा वैद्यराज
हरदुआगंज।**

[illegible] सम्पादक '[illegible]' प्रकाशक :-

**वैद्यराज राधावल्लभ
सम्पादक आरोग्यसिन्धु।**

मास्टर रघुनन्दनलाल गुप्त के प्रबन्ध से
यू० पी० आर्ट प्रिंटिंग वर्क्स कासगंज में
छपकर प्रकाशित हुआ।

प्रथमबार १००० प्र० } जनवरी सन् १९१७ { मूल्य प्रति पु० ।≈)

भूमिका

हिन्दी भाषा में केवल नवीन पश्चिमीय विचारों को ही बतलाने वाली क्षयरोग, सम्बन्धी दो एक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। नवीन और प्राचीन उभय विचारों को स्पष्ट समझाने वाली क्षय सम्बन्धी पुस्तकों का अभाव हमारे चित्त में बहुत दिनों से खटकता था कानपुर के वैद्यसम्मेलन में क्षय रोग पर उत्तम निबन्ध लिखने वाले को पुरस्कार देने का वचन भी इस ही लिये दिया था और आरोग्यसिन्धु मासिक पत्र में क्षय सम्बन्धी लेख माला निकाली थी। लेख माला को गुण ग्राही वैद्यों और पत्र सम्पादकों ने सामयिक उपयोगी और विचार पूर्ण बतलाया, तब से स्वयं इस विषय पर स्वतन्त्र निबन्ध लिखने का विचार किया।

हमने क्षय रोग और उस की चिकित्सा—नामक निबन्ध लिखा और उसही अवसर पर हमारे मित्र पं० हरिशंकर जी शर्मा वैद्यराज ने वैद्य सम्मेलन मथुरा के लिये क्षयादर्श नामक निबन्ध लिखा। सम्मेलन के पश्चात् वैद्यराज जी ने हमारे पास उसे प्रकाशित होने के लिये भेजा "एक और एक ग्यारह" वाली कहावत चरितार्थ हुई। दोनों पुस्तकों के विचार उत्तम समझे गये। इस लिये उपर्युक्त वैद्यराज जी के निबन्ध की प्रधानता रख हम इस क्षयादर्श नामक निबन्ध को प्रकाशित करते हैं और वैद्यराज जी को इस परिश्रम के लिये धन्यवाद देते हैं।

हिन्दीसाहित्य में ऐसी पुस्तकों की कैसी आवश्यकता है इसे वैद्य महाशय अच्छी तरह जानते हुये भी अपनी उदासीनता दिखाते हैं। हिन्दी भाषा में नवीन शैली से लिखी हुई पुस्तकों की मांग बहुत कम होती है हम ने छोटी २ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित कर इस बात का अच्छी प्रकार अनुभव कर लिया है तो भी हम अपने पाठकों के सामने इस निबन्ध को रखते हैं और आशा करते हैं कि वैद्य महाशय इसे अपना हम को उत्साहित करेंगे।

इस पुस्तक में क्षय रोग के कारण, स्वरूपभेद, कीटविज्ञान, दोषविज्ञान, चिकित्सा आदि सभी उपयोगी विषयों का समावेश किया गया है। वैद्य और सर्व साधारण दोनों इसे पढ़कर लाभ उठा सकते हैं। यदि गुण ग्राही वैद्य इसे स्वीकार करेंगे तो हिन्दी भाषा में वैद्यक सम्बन्धी अन्य उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की जायेंगी।

क्षमा प्रार्थना—क्षयादर्श में यत्र तत्र कार्य्यकर्त्ताओं की असावधानी से अशुद्धियां रहगई हैं जिन का हम को पश्चात्ताप है। पाठक सुधार कर पढ़ें।

राधावल्लभ वैद्यराज।

॥ श्रीः ॥



क्षयादर्श

अर्थात्

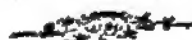
क्षयरोग उसकी चिकित्सा



मंगला चरणम्



यः प्राणदं गदशमार्थ मथर्ववेदो ।
पाङ्गं स्वयं निगममायुष आततान ॥
भाविप्रजा कुशल कामनया पुरैव ।
तं वेधसं परम कारुणिकं नमामि ॥



क्षयरोग की भयंकरता

और वैद्यों का कर्तव्य

क्षयरोग कैसा भयंकर है ! जनसमुदाय का नाश करने वाली कैसी महाव्याधि है ! बड़े २ धैर्य्य शालियों के धैर्य्यको क्षय करने

वाली, अभिमानियों के मान को मर्दन करने वाली कैसी घोर यातना है। इस रोग से प्रति वर्ष३० लाख मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। बहुसंख्यक युवा बिना खिले पुष्पों के समान इस विश्व वाटिका में अपने यशरूपी सौरभ के फैलाये बिना ही चल बसते हैं। तब ही तो इसे रोगराट् कहते हैं। राज यक्ष्मा कह कर पुकारते हैं॥

इस रोग का आधिपत्य भारत वर्ष में ही नहीं किन्तु संसार में चमकते हुए अमेरिका, जापान,जर्मनी, और इंगलैंड आदि देशों में भी है। परन्तु वहां के पुरुष भारत वासियों के समान वज्रहृदय नहीं हैं जो अपने देश वासियों की अकाल मृत्युओं की ओर किञ्चिन्मात्र ध्यान न देकर घोर निद्रा में पड़े सोते रहते हों। शोक है कि महर्षियों के दिव्य ज्ञान से निकले हुए सदुपायों के विद्यमान रहते हुए भी हम कुछ भी उद्योग नहीं करते। पाश्चात्य देशों में इस रोग पर विचार करने वाली अनेक सभायें स्थापित हैं। वहां के विद्वान अपने मस्तिष्क बल से इस विषय की खोज में पूर्ण उद्योग करते हैं। प्रति वर्ष बड़े २ डाक्टर एक स्थान पर सम्मिलित हो इस महारोग के सम्बन्ध में अपना २ मत और अनुसन्धान प्रकाशित करते हैं। इस रोग पर विचार करने के लिये कई समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं। इस रोग पर उत्तम निबन्ध लिखने वालों को हजारों रुपयों का इनाम दिया जाता है। थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ कि अमेरिका के वाशिंगटन् शहर में क्षयरोग पर विचार करने के लिये एक महासभा हुई थी। जिस में समस्त देशों से ४५० नामी २ डाक्टर डेलीगेट बनकर पधारे थे। और इस रोग के विषय में यथा सम्भव विचार कर अपने कर्तव्य का पालन किया था। हम को अपने प्रिय वैद्य भाइयों की दशा देखकर बड़ा शोक होता है। हम लोग संसार में मान चाहते हैं। विदेशी चिकित्सकों को अपनी चिकित्सा के सद्गुणों

को परास्त करना चाहते हैं, संसार भरके चिकित्सकों में उच्चासन चाहते हैं, राजाश्रय चाहते हैं चाहते सब कुछ हैं परन्तु करते कुछ भी नहीं केवल अपने पूर्वज विद्यादिग्गजों की कीर्त्ति पर ही अभिमान करते हुए अकड़े जाते हैं। हे अश्विनी कुमार, आत्रेय, धन्वन्तरि आदि देवर्षि, महर्षियों के पथानुगामियो! यदि तुम संसार में कीर्त्ति चाहते हो तो संसार के सामने अपना प्रभाव दिखाइये। देशभक्ति का अञ्जन लगाकर ज्ञान रूपी नेत्रों को निर्मल बनाइये। तुम्हारा कर्तव्य है कि विदेशी डाक्टरो का अनुकरण कर इस रोग के विषय में पूर्ण विचार करो। प्राचीन ऋषियों का क्या मत है? वर्तमान संसार के डाक्टर लोगो की क्या २ सम्मतियां हैं? क्षयरोग की चिकित्सा प्रणाली क्या है? इत्यादि बातों का विचार करो। क्षय रोग के कारणों से सर्वसाधारण को परिचित करो। जिस से वे अपनी आत्मरक्षा कर सकें। रोग उत्पन्न होते ही सावधान होकर योग्य वैद्य से चिकित्सा करा सकें।



॥ क्षय रोग का नाम करण ॥

वैद्यो व्याधिमता यस्माद् व्याधेर्यत्नेन यक्ष्यते
स यक्ष्मा प्रोच्यते,लोके शब्दशास्त्र विशारदैः॥१॥
राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः
तस्मात्तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः॥२॥
क्रियाक्षयकरत्वात्तु क्षय इत्युच्यते बुधैः
संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते॥३॥ पु०

क्षयरोग के यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, क्षय, शोष, आदि कई नाम हैं। इन नामों से ही जाना जाता है कि यह रोग बड़ा कठिन है और इस का प्रादुर्भाव अति प्राचीन काल से है। तथा इस रोग में धातुओं का क्षय होता है। जिस रोग के कारण वैद्य रोगी द्वारा अधिक सत्कार पावे (यजन किया जावे) उसे शब्द शास्त्र यक्ष्मा कहते हैं। पहले यह रोग चन्द्रमा को हुआ था इस से इस का नाम राजयक्ष्मा पड़ा। शारीरिक क्रियाओं का क्षय करता है इस से क्षय, और रसादिक धातुओं के सुखाने से शोष कहा जाता है। अंग्रेज़ी में इसे कॉन्ज़म्पशन (Consumption) अथवा (Phthisis) थाइसिस कहते हैं जिन का अर्थ भी निरन्तर क्षय करने वाला ही है। फ़ारसी में इसे दिक़ या सिल कहते हैं।

क्षय रोग का सामान्य विवरण.

जिस रोग में शारीरिक धातुओं की कमी होने से शरीर प्रति दिन निर्बल होता जावे उसे क्षय कहते हैं। यह रोग मलमूत्रादिकों के वेगों को रोकने, मैथुनादि विषयों से शारीरिक धातुओं के क्षय होने, शक्ति से विपरीत साहस करने, और विषमाशन से उत्पन्न होता है। इस रोग के पञ्जे में युवा अवस्था वाले तथा सुकुमार स्त्री पुरुष प्रायः अधिकता से फँसते हैं। जिन मनुष्यों को दिमाग़ से अधिक काम पड़ता है, अथवा जो धत्तिक मादक पदार्थों को सेवन करते हुए विषयासक्त रहते हैं, उनको प्रायः इस रोग का शिकार बनना पड़ता है। यह रोग शनैः२ इस रीति से बढ़ता है कि रोगी को तथा उस के घर वालों को

प्रकट रूप से रोग बढ़ा हुआ मालूम नहीं पड़ता। जब रोगी चलने फिरने में अशक्त होजाता है और रोग असाध्य होकर उसे मृत्युशय्या पर सुलाना चाहता है तब कहीं इस की खबर पड़ती है। डाक्टर जो. डबल्यू. विलसन ने ठीक कहा है कि–

"Like a serpent in the grass or among stones lying in ambush for its prey; Consumption often begins to do itsdestroying work before it manifests itself openly."

अर्थात् अपनी शिकार की टोह में घास या पत्थर के नीचे छिपे हुए सर्प के समान क्षयरोग भी प्रगट होने से पूर्व ही (शरीर में छिपा हुआ भीतर ही भीतर) शरीर को नाश करने का काम प्रारम्भ कर देता है। जो मनुष्य रोग की प्रथमावस्था में ही सावधान होकर अपनी पूरी चिकित्सा कराते हैं वेहीप्रायः बच जाते हैं। रक्तमांसादिकों के क्षीण होने पर कोई रोगी नहीं बचता।

क्षयरोग के सामान्य लक्षण ये हैं-रोगी को जल्दी २ जुकाम हो खांसी का ठसका बना रहे, फैफड़े निर्बल होते जावें, तथा उन में शूल या घाव हो,कन्धों वा पसवाड़ों में खिंचाव हो, हाथ पावों में जलन हो, बहुत खांसने पर थोड़ा कफ निकले किसी २ को कफ की अधिकता हो। कफ के साथ रुधिर की लालिमा अथवा पीव आवे, ज्वर की मन्द गर्मी तो सर्वदा बनी रहे, कभी २ ज्वर वेग से चढ़आवे, रक्तमांसादि धातु बल प्रति दिन क्षीण होते जावें। थोड़े दिन रोगी को आरामसा प्रतीत होकर फिर दौरा होने से पूर्ववत् स्थिति हो जावे। चहरे पर तो रौनक मालूम देवे किन्तु शरीर दुर्बल होता जावे। विचार शक्ति कम हो।

क्षय सम्बन्धी कुछ डाक्टरी सिद्धान्त

(१) क्षयी अथवा राजयक्ष्मा एक पुरानी बीमारी है जोकि फेफड़ों में सूक्ष्म दानों व परमाणु की स्थिति से उत्पन्न होती है। ये परमाणु गोलाकार होते हैं और कभी कभी नंगी आंख से भी देख पड़ते हैं तथा असंख्य होते हैं। यहां तक कि किसी २ रोगपीड़ित अंग में तो करोड़ों पाये जाते हैं और इन्हीं की वजह से इस रोग को (Tuberculosis) "ट्यूबर्क्यूलोसिस्" कहते हैं। ये कीटाणु ट्यूबर्किल्स कहाते हैं। यह छोटासा पर घन जीवी कीटाणु राजयक्ष्मा का प्रधान कारण समझा जाता है। यह दुष्ट घाव डाल २ कर न केवल फेफड़े ही को शनैः शनैः नष्ट करता है बल्कि साथ ही में "टोक्सिन्" नामी एक विषैले पदार्थ कोभी उत्पन्न करता है जो अति विकराल चिन्हों का जन्म दायक है॥

(२) सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों से क्षय के कीटाणु अधिकतर थूक में पाये जाते हैं वे गोल डण्डियों के से स्वरूप वाले होते हैं॥

(३) क्षयी के परमाणु श्वास के साथ फेफड़ों में या भोजन के साथ आमाशय में पहुंच कर रोग उत्पन्न करते हैं।

(४) किसी व्रण द्वारा कीटाणु रुधिर में पहुंच कर क्षयरोग पैदा करते हैं।

(५) मादक पदार्थों के इस्तैमाल से या अन्य किसी दुर्गुण से निर्बल हुआ शरीर शोष कीटाणुओं की उपयुक्त भूमि है।

(६) क्षयरोगी का थूक बेपरवाही से पड़ा न रहना चाहिये। क्योंकि थूक में असंख्य कीटाणु रहते हैं जो दूसरे मनुष्यों पर आक्रमण करते हैं। थूक या कफ को सूख ने से पहले ही नष्ट कर देना चाहिये।

(७) कल कारखानो तथा अन्य बड़े २ स्थानों में थूक दान रखदेने चाहिये जिस में ही सब लोग थूकें और वह थूक जला दिया जावे। क्षयरोगी एक २ जेबी थूक दान रक्खें। और जरूरत के समय उस में थूक कर जेब में रखलें और पीछे साफ़ कर डालें।

(८) पशुओं को भी क्षयरोग होजाता है वे भी प्रायः क्षयरोगियों के थूक चाटने से बीमार हो जाते हैं। इस से थूकदानों को हिफाजत से रक्खो।

(९) क्षयपीड़ित गाय भैंसों के दूधपीने से क्षयरोग हो जाता है। इसलिये दुध को परीक्षा करके काम में लाना चाहिये।

(१०) क्षयरोग संक्रामक है तथा पुश्तैनी है।

(११) कच्चे दुग्ध में क्षय के असंख्य कीटाणु रहते हैं दुग्ध को औटा कर पीना चाहिये।

(१२) बहुत से ऐसे रोग हैं जिन से शरीर दुर्बल हो जाता है और पीछे उस मे कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं, जैसे न्यूमोनिया, चेचक, खसरा, खांसी, आतशक।

(१३) कुछ ऐसे पेशे हैं जिन से क्षय पैदा होता है जैसे छपाई सिलाई, पत्थर, लोहे उठाने का काम, पिसाई, हलवाईगीरी, कल कारखानो में धूल का काम।

(१४) राजयक्ष्मा के प्रधान लक्षण, खांसी कफ, मन्दज्वर, श्वास लेने में तकलीफ़, हृदय में दर्द, रात्रिमें पसीना, भूख की कमी, रुधिर, वमन, और क्षीणता है।

(१५) क्षयरोग की कई किस्में हैं जैसे कंठकी क्षयी, हड्डियों की क्षयी, बच्चो की क्षयी, आंतो की क्षयी, कण्ठमाला क्षयी आदि।

(१६) क्षयरोग यदि नवीन हो तो बड़े प्रयत्न करने से आराम भी हो सकता है।

क्षय रोग कैसे उत्पन्न होता है ?।

(डाक्टरी सिद्धान्तों का खंडन मंडन)

क्षय रोग के कारण आयुर्वेदीय ग्रन्थों में बड़े विस्तार से लिखे गये हैं। डाक्टर लोगों ने भी इस रोग के कारण ढूंढने में बड़ा परिश्रम किया है। उनके विचारों से अनेक मनुष्य सहमत हों या न हों परन्तु उन के उद्योग की प्रशंसा सब ही विचारशील करते हैं। इन्हों ने जो कारण ढूंढे हैं वे पर्याप्त नहीं हैं और आयुर्वेदीय शास्त्रों में जितना निश्चित हो चुका है उन का अनुसन्धान अभी वहां तक भी नहीं पहुंचा है। डाक्टर लोग एक दूसरे के विचार से परस्पर सहमत भी नहीं हैं। एक के निश्चय को दूसरा प्रबल युक्तियों से खण्डन करता है। क्षयरोग के सम्बन्ध में जो नई शोध हुई है उसे हमारे विचार शील वैद्यों को जानना एक आवश्यकीय बात है। तथा अपने महर्षियों के पुराने सिद्धान्तों को संसार के सामने उपस्थित करना भी उचित कर्म है। हम इस लेख द्वारा पहले पश्चिमीय डाक्टरों के मत तथा उन का खण्डन मंडन दिखलाकर पीछे आयुर्वेदीय सिद्धान्तों को दिखावेंगे। जिस से पाठक जान सकेंगे कि दोनों मतों में कौन उत्तम है। और प्राचीन ऋषियों का दिव्य ज्ञान कितना ऊंचे दर्जे का है।

1 डाक्टर लोगों की नई शोध यह है कि यह रोग "टयूबर्किल" नामक कीटाणुओं से उत्पन्न होता है। ये कीटाणु गोलाकार होते हैं। श्वास के साथ फेफड़ों में, अथवा आहार के साथ आमाशय में या किसी घाव के साथ रुधिर में प्रविष्ट होकर क्षय को उत्पन्न करते हैं। क्षय रोग वाले मनुष्य के थूक और कफ में असंख्य कीटाणु रहते हैं। थूक और कफ के सूखने पर वे कीटाणु हवा और धूल में मिल रोगी के समीप में रहने वाले पुरुषों के शरीरों में प्रवेश कर जाते हैं। इस से यह रोग संक्रामक भी है।

यह रोग पुश्तैनी भी मालूम पड़ता है। क्योंकि अनेक स्थानों में ऐसा देखा गया है कि पिता के बीमार होने पर कालान्तर में उस के पुत्र को भी यह रोग हुआ है। गायों के कच्चे दूध में भी इस रोग के कीटाणु होते हैं। पशुओं को भी क्षय रोग होता है। क्षय वाली गौ के दूध पीने से ये कीटाणु मनुष्य के आमाशय में पहुंच क्षय रोग उत्पन्न करते हैं।

कीटाणुओं से क्षय रोग होता है इस बात की नवीन शोध करने वाले जर्मनी के प्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता डाक्टर रॉबर्ट कॉक (D. Roboert Koch) हुए, किन्तु इस शोध से यहां के सब डाक्टर सहमत नहीं हैं यहां के अनेक विद्वान् डाक्टर कीटाणुवाद (थियॉरी) से प्रबल विरोध रखते हैं। इन विरोध पक्ष वाले डाक्टरों का कथन भी युक्ति सिद्ध प्रतीत होता है।

इस प्रश्न की मीमांसा में क्षयरोग के "स्पेशलिस्ट" विद्वान् डाक्टर डेविड पार्क एम. डी ने कहा है कि:—

" When Koch discovered the bacillus the medical profession concluded that these germs were the sole and original cause of tuberculosis."......But this idea has been found to be practically a complete failure."

जब से प्रॉफेसर काक ने क्षय के कीटाणुओं को ढूंढा तब से डाक्टरों ने इस पर ऐसा निश्चय किया कि ये जन्तु ही क्षय के मूल और मुख्य कारण हैं परन्तु उन का ऐसा मानना केवल निष्फलता रूप ही है,,

इस ही प्रकार डाक्टर जे. टी. रोबिन्सन, एम. डी., ने कहा है "These so called deadly germs that the political doctors prate so much about are our

friends, they are nature's scavengers, it is a natural method of elimintion the throwing out of decayed putrid matter from the system. Theso germs are a product of disease and not the cause They produce metamorphosis of tissue a form of dead matter, which can be eliminated Of all the wild absurd theories that have ever been emposed upon an intelligent public, the germ theory is most infamous and false

कपटी और बदमाश डक्टर जो कीटाणुओं की भयङ्करता के सम्बन्ध में बकते फिरते हैं वे "जर्म" अथवा जन्तु तो हमारे मित्र हैं, प्रकृति ने उन्हें गन्दगी को साफ करने के लिये बनाया है। क्योंकि मलोत्सर्ग करना एक स्वाभाविक है अर्थात् दुर्गन्धि युक्त मल निकलना एक प्राकृत नियम है। ये जन्तु रोग के कारण नहीं हैं किन्तु रोग से उत्पन्न होते हैं (जन्तु रोग को उत्पन्न नहीं करते किन्तु रोग से जन्तु पैदा होते हैं) शरीर के स्नायु और शिराओं को रूपान्तर कर के उन में से निर्जीव जन्तुओं को जुदा करते हैं, जिन से वे कीटाणु सरलता से शरीर के बाहर निकाले जाते हैं। बुद्धिमान प्रजा को भयभीत करने के लिये जो जगली, मिथ्या और मूर्खता से भरे हुए सिद्धान्त निकाले गये हैं उन सब में जन्तु सम्बन्धी विचार अर्थात् थियारी सब से अधिक धिक्कार का पात्र है।

अमेरिका के डाक्टर चार्लस टाईटेज, एम, डी, का मत है
The world appears to have gone microbe mad And yet upto the present time in spite of the vasto amount of research that has been going

on it has never been satisfactorily demonstrated that the germ is the cause of disease. It is true that there are certain diseases in which a specific germ is invariably present but in view of the fact that the said germs are present in countless millions of people who never develope the disease.

जन्तुओं के पीछे संसार मूर्ख होगया है ऐसा ज्ञान होता है। अब तक इस के सम्बन्ध में बड़ा विचार होने पर भी सन्तोषजनक रीति से यह सिद्ध नहीं किया गया कि रोग के कारण जन्तु ही होते हैं। यह बात ठीक है कि किसी रोग में एक विशेष प्रकार के जन्तु शरीर में रहते हैं, परन्तु स्वस्थ मनुष्यों के शरीरों में भी वैसे ही असंख्यजन्तु शरीर देखने में आते हैं, उन को यह व्याधि क्यों नहीं लगती। इस सत्य बात को विचारने से यह बात जानी जाती है कि रोग से जन्तु उत्पन्न होते हैं जन्तु से रोग नहीं—उपर्युक्त डाक्टरों के अतिरिक्त और भी अनेक विद्वान् डाक्टर इस के विरुद्ध हैं।

दुग्ध के साथ या अन्य किसी प्रकार के आहार के साथ ये परमाणु शरीर में प्रवेश कर क्षय को उत्पन्न करते हैं इस की प्रतिकूलता भी कम नहीं है। उस के सम्बन्ध में जो डाक्टरों का मत है उस का सारांश यह है:—संसार में प्रायः सब वस्तुएं जो कि खाने पीने में आती हैं (जैसे पानी दूध, आहार) उनके साथ क्षय के जन्तु या विष मनुष्यों में प्रवेश करता है, यह कहना भी ठीक नहीं है। न इसके सम्बन्ध में कोई अकाट्य युक्ति है। यह सम्पूर्ण विश्व जन्तुमय है ऐसा सब धर्मवाले मानते हैं। जैन-शास्त्रों में तो आजकल कहे जानेवाले जन्तुओं से भी असंख्य सूक्ष्म जन्तुओं का वर्णन है। शुद्ध से शुद्ध जल और वायु में भी

ये रहते हैं। दुग्ध और माखन में भी इनकी स्थिति है। एक छोटे चमचे भर दूध में कम से कम तीसलाख और अधिक से अधिक एक करोड़ जन्तु रहते हैं। गाय के बिना औटाये दुग्ध में जो जन्तु रहते हैं उनसे क्षय उत्पन्न नहीं होता। यदि उस दूध में क्षयरोगोत्पादक तथा आयुनाशक जन्तु रहते हैं, तो कहिये असंख्य कीटाणुओं वाले दुग्ध को पैदा करनेवाली गाय ही कैसे जीवित रहसकती है। और दूध के औटाने से क्या सब कीटाणु नष्ट नहीं हो जाते हैं। यदि थोड़े बहुत शेष रहजाते हैं तो क्या वे पुनः नहीं बढ़ सकते। क्योंकि इन कीटाणुओं में बहुत शीघ्र बढ़ने की शक्ति होती है। जन्तुओं को प्रसिद्ध करनेवाले डाक्टर राबर्ट कॉक का भी इस विषय में मत बदल गया और वे अन्त में कह गये कि कैसी ही क्षय वाली गाय का दूध पीने से क्षय रोग उत्पन्न नहीं होता। अतः जो डाक्टर इस मिथ्या भय को दिखाते हैं वे प्रजा को निर्बल बनाते हैं। और बेचारी गायों को निरर्थक हानि पहुंचाते हैं। आहार के साथ गये हुए भी ये कीटाणु क्षय उत्पन्न नहीं कर सकते। क्योंकि आमाशय के "गस्ट्रीकजुस" में हाईड्रोक्लोरिक एसिड रहता है जिस से अथवा आहार को पचानेवाले अन्य रस से ये नाश हो जाते हैं। यदि आमाशय या अन्तड़ियों में कोई व्रण न हो तो ये जन्तु कोई हानि नहीं पहुंचासकते।

क्षय रोग पुश्तैनी भी नहीं है, जैसा कि फिरंग या उपदंश का विष कई पीढ़ी तक रहता है वैसा क्षयरोग का नहीं। किसी कुटुम्ब में जो यह देखा आता है कि पिता को क्षय होने पर कालान्तर में उस के पुत्र को भी क्षयरोग हुआ है, इसका कारण अन्य ही है। जिस प्रकार प्रायः लम्बे मनुष्य का पुत्र लम्बा, ठिंगने का ठिंगना, स्वरूपवान का स्वरूपवान होता है, उस ही प्रकार प्राय निर्बल फेफड़ेवाले पिता का पुत्र भी निर्बल फेफड़ोंवाला होत है। और प्राय कुटुम्ब भरके आहार विहार भी समान ही

होते हैं। इस से जिन कारणों से पिता को क्षय रोग पैदा हुआ था उनही कारणों से पुत्र को भी क्षयरोग होजाता है। यदि वह पुत्र सावधान होकर पथ्य से रहे दुराचार और व्यसनों से बचे तो यह रोग कदापि उत्पन्न न हो।

❀ कीटाणु कारण वाद ❀
❀ और आयुर्वेदीय शास्त्र ❀



आज कल जिस विज्ञान की पाश्चात्य देशों में धूम मच रही है, जिस जन्तु विज्ञान के आविष्कर्ता बनके इस बीसवीं शताब्दि में पश्चिमीय डाक्टर अपनी शोध और उन्नति पर अभिमान करते हैं, जिस जन्तु विज्ञान को आधुनिक विद्वान बड़ी आश्चर्य भरी दृष्टि से देखते हैं, जिस जन्तुविज्ञान को देख पुरानी चालके रोगों की जांच ढकोसला बताई जाती है, उस जन्तु विज्ञान से क्या हमारे आयुर्वेदीय शास्त्र शून्य हैं ? क्या सचमुच इस ज्ञान के आविष्कर्ता पश्चिमीय डाक्टर ही हैं ? क्या हमारे पूज्यपाद ऋषियों का ज्ञान हमारी अज्ञानता और अवहेलना से विदेशी विद्वानों के मूढों को, हृदय कमलों को, प्रकाशित नहीं करता ? हम अभिमान पूर्वक कह सकते हैं कि वर्तमान समय का " जन्तुविज्ञान,, भारतीय वैद्यकज्ञान का अणु मात्र ही है। आज नहीं कितनी ही शताब्दियों पहले हमारे महर्षि इसे उत्तम रीतिसे जानते थे। वे केवल जानते ही न थे प्रत्युत इस विषय को उन्हों ने अच्छी प्रकार ऊहा पोह कर के अपने ग्रन्थों में बड़ी उत्तम रीति से प्रदर्शित भी किया है। जिस के प्रमाण अनेक संहिताओं

में आज कल भी पाये जाते हैं। जब वेदों में भी "जन्तु विज्ञान,, का विस्तृत वर्णन पाया जाता है तब न मालूम विदेशी लोग किस मुंह से अपने लिये इस ज्ञान के उत्पन्न करने वाले मक्षा बतलाते हैं। अब भारतीय वैद्यों ने अपने आयुर्वेदीय मंदिर की सँभाल करनी प्रारम्भ करदी है। उस टूटे फूटे जीर्ण मंदिर में भी बहुतसी सामिग्री बची है। इस से इस निरपेक्ष समय में हम अपनी सम्पत्ति को दूसरों को [redacted] बताने देंगे। यह हम मानते हैं कि प्राचीन विज्ञान बिना संस्कार किया होगा था और वर्त मान समय में उसे छीलकर विदेशी विद्वानों ने प्रकाश युक्त बनाया है। परन्तु उसे खान से निकालने वाले हमारे पूर्वज ऋषि ही थे।

आयुर्वेद के आचार्य्य अनेक स्थानों पर जीवाणु कारणवाद विषयक ऐसे सुन्दर हेतु सूत्र और लिंग सूत्र लिख गये हैं जिन्हें देख कर कोई भी यह नहीं कह सकता कि आयुर्वेदीय चिकित्सा में इस विषय के प्रमाण नहीं हैं। नीचे लिखेहुए शास्त्रीय विचार से विद्वान लोग जान सकेंगे कि आयुर्वेदज्ञ कीटाणु कारण वाद से कैसे परिचित थे।

वेदों में क्रिमिवर्णन

हमारा आयुर्वेद, अथर्व वेद का उपांग है। उस अथर्व वेद में कीट विज्ञान विस्तार पूर्वक वर्णित है उस में लिखा है कि अनेक प्रकार की कृमियां होती हैं जिन से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, बहुतसी कृ-मियां दीखती हैं और बहुतसी सूक्ष्म होने से नहीं दीखतीं, वे कृमियां मनुष्यों के अन्तड़ियां शिर, पीठ आदि स्थानों में रहती हैं। "दृष्टमदृष्टमतृहम्,, "अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयंक्रमीन्,, इत्यादि अनेक मन्त्रों में कीट विज्ञान भरा पड़ा है।

क्रिमियों के भेद और स्वरूप | क्रिमि बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार के होते हैं। बाह्यों में तिल के बराबर, बाल, और वस्त्रों में रहने वाले जूँएं लीख आदि हैं। आभ्यन्तरों में, कफज रक्तज और पुरीषज हैं। जिन के स्वरूपादि के विषय में आचार्य्यों ने लिखा है।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः
पृथुव्रध्न निभाः केचित् केचिद्गण्डूपदोपमाः
रूढ धान्यांकुराकारास्तनु दीर्घास्तथाणवः
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधातु ते
अन्त्रादा उदरावेष्ठ हृदयादा महागुदाः
चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते
रक्तवाहि शिरास्थान रक्तजा जन्तवोणवः
प्रपादावृत्त ताम्राश्च सौक्ष्म्यात् केचिददर्शनाः
केशादा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदम्बराः
षट् ते कुष्ठैककर्माणाः सहसौरस मातरः ॥

इन श्लोकों का संक्षेप से यह अर्थ है कि कफ से आमाशय में उत्पन्न हुए क्रिमि कोई मोटे चर्मलता के समान, कोई गेंडुए के समान, कोई धान्यांकुर के सदृश कोई लम्बे और कोई सूक्ष्म होते हैं। ये क्रिमि श्वेत और लालरंगवाले हैं। अंत्राद, हृदयावेष्ट, महागुद

पुरुष, दर्भकुसुम, और सुगन्ध इन के नाम हैं। इस ही प्रकार कफज क्रिमि रक्तवाहिनी शिराओं में रहते हैं, यह बहुत बारीक, कई पैरवाले गोल तथा लाल होते हैं। कोई २ इतने बारीक होते हैं जो दीख नहीं पड़ते। केशाद, लोमविध्वंसक, रोमद्वीप, उदम्बर सौरस, और मातर इन नामों से छः प्रकार के हैं। इन क्रिमियों से कुष्ठ उत्पन्न होता है। इस ही प्रकार पुरीषज क्रिमियां हैं।

अब विचारिये कि क्रिमियों का वर्णन कैसा स्पष्ट है। दृश्य अदृश्य, सूक्ष्म, स्थूलादि सब प्रकार के कीड़ों की गणना कर दी है। नाम कल्पना भी किस ढंग से की है अदृश्य और सूक्ष्म क्रिमियों को ऋषियों ने किस प्रकार दृष्टि गत किया है। देखा ही नहीं किन्तु तज्जन्य रोगों का वर्णन तथा उन के रंग आदि का वर्णन कैसा विशद रूप से किया है। रंग के सम्बन्ध में प्रायः शुक्ल ताम्र आदि ऊपर लिखा गया है। क्रिमिजन्य रोगों को यहां वर्णन करते हैं।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः
भक्त द्वेषोतिसारश्च संजात क्रिमि लक्षणम्
हृल्लास मास्य स्रवणम विपाकमरोचकम्
मूर्च्छा छर्दिर्ज्वरानाह कास क्षवथु पीनसान्
कुष्ठो ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्दि एवच
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्तिनरान्नरम् ॥

भावार्थ–ज्वर वर्ण का बदलना, शूल, हृद्रोग, ग्लानि, भ्रम, भोजन में अरुचि, अतिसार इतने लक्षण क्रिमि उत्पन्न होने पर

होते हैं। जी मिचलाना, मुख से लार गिरना, अन्न का न पचना, अरुचि,मूर्च्छा, छर्दि, ये रोग क्रिमियों से होजाते हैं। कुष्ठ ज्वर शोष, नेत्राभिष्यन्दि और शीतला आदि संक्रामक रोग इन क्रिमयों के कारण ही एक से दूसरे मनुष्य के लग जाते हैं॥ आयुर्वेदीय शास्त्रों में रोगों के कारण प्रधानता से दोष माने हैं। कीटाणुओं को कहीं२ साधारण कारण माना है। रक्तवाही स्रोत आमाशय, हृदय, फुफ्फुसादि के बिगड़ने से कीटाणु अवश्य उत्पन्न होते है। और शरीर के भीतर बाहर अनेक रोग उत्पन्न करते है। किन्तु हमारे यहां एलोपेथी वालों के समान रोग के कारण एक मात्र कीटाणु ही नहीं माने गये। दोषों का ज्ञान दुर्ज्ञेय और अतीन्द्रिय होने के कारण वे लोग यहां तक नहीं पहुंचे। आप सोच सकते है कि संसार की कोई वस्तु बिना वायु के उत्पन्न नहीं होती। तब ये जीवाणु बिना वायु के कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। इसी प्रकार जीवाणुओं में घनिष्ठता आदि बिना श्लेष्मा और पित के नहीं हो सकते। अतएव यह अवश्य मानना पड़ेगा कि रोगोत्पादक दूषित जीवाणु दुष्ट हुए वातादिकों से पैदा होते है। आप अच्छी तरह समझ लेंगे कि जब वायु द्वारा सोमगुण विशिष्ट शुक्र और आग्नेय गुण विशिष्ट शोणित के संयोग से ही मांस पिण्ड उत्पन्न होता है तब जीवाणुओं की उत्पत्ति में वायु तथा सोमगुण युक्त कफ, और अग्निगुण युक्त पित्त को मानना क्या ठीक नहीं है। इसलिये हमारे शास्त्र इन जीवाणुओं को रोगोत्पादक मानते हुए भी प्रधानता से दोषों को ही कारण मानते हैं। हां इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि कहीं दुष्ट दोषों से और कहीं दुष्टोद्भव कीटों से, कहीं दोनों के संयोग से, रोग की अत्यन्त वृद्धि होती है।

आयुर्वेद मतानुसार क्षय रोग में जीवाणुओं की सत्ता।

उपर्युक्त जीवाणु वाद से यह जाना जाता है कि शोष ज्वर, हृदय रोग में क्रिमियों का होना आयुर्वेद शास्त्र भी मानते है। क्षय रोग में ये क्रिमियां इस प्रकार उत्पन्न होती हैं।

(१) कफ की वृद्धि, और आमाशय का बिगड़ना ये क्षय रोग के प्रारम्भिक चिन्ह हैं। इससे आमाशय में कफज क्रिमियां हो जाती हैं और वे आहार के सारभाग को बिगाड़ देती हैं।

(२) क्षय रोग में रस बिगड़ता है। रस से रक्त दूषित होता है अतः "रक्तवाहि शिरा स्थान" इस प्रमाणानुसार रक्तवाही नलियों में भी सूक्ष्म रक्तज क्रिमियां होती हैं। इस से अनेक यत्न करने पर भी रक्त क्षीण हो निकलता है।

(३) हृदय में त्रिदोषों के बिगड़ने से यक्ष्मा होता है और हृदय में भी कीटाणुओं का होना लिखा है इस से क्षय रोग में हृदय के बिगड़ने पर कीटाणु उत्पन्न होते हैं।

(४) प्रतिश्याय के बिगड़ने और बढ़ने से यक्ष्मा शीघ्र उत्पन्न होजाता है। और प्रतिश्याय के अधिक बिगड़ने पर क्रिमियां उत्पन्न होती हैं जैसा कि लिखा है "मूर्च्छन्ति क्रमयश्चात्र श्वेतास्निग्धास्तथाणव" इस से क्षयरोग में मस्तिष्क की ओर कीटाणुओं का होना सम्भव है।

(५) "कुष्ठो, ज्वरश्च शोषश्च" के अनुसार जब शोषरोग संक्रामक है तो इस में क्रिमियों का होना शास्त्र सम्मत है।

क्षयरोग के प्राचीन मतानुसार
कारण

क्षयरोग के इन पश्चिमीय नवीन कारणों की तरफ से ध्यान हटाकर अब आयुर्वेदीय प्राचीन कारणों की ओर अपने पाठकों का ध्यान खींचते हैं। प्राचीन महर्षियों और अर्वाचीन विद्वानों के विचारों में पृथ्वी आकाश का सा अन्तर है। प्राचीन महर्षि आध्यात्मिक ज्ञान सम्पादन करते थे और आज के विद्वान् सांसारिक कार्य्य में दक्ष हैं। उन की दृष्टि प्रत्येक विचार में भीतरी जाती थी और आजकल के विद्वानों की बाहरी ही रह जाती है। उन का ज्ञान निर्मल था और आज का बनावटी उन का एक २ वाक्य सारमय था और आजकल के बड़े २ पोथे निरर्थक। उपर्युक्त क्षय सम्बन्धी नई विवेचना भी इस ही ढंग की है। हम कीटाणु ज्ञान को मानते हुए भी यह कहते हैं कि ये कारण मुख्य या पर्याप्त नहीं हैं। इस बात का विचार करना चाहिये कि ये कीटाणु सब प्रकार के शरीरों में प्रवेश कर सके हैं या किसी विशेष प्रकार के शरीरों में, जिस प्रकार किसी खेत में बोया हुआ बीज तब ही उगता है जब उस के अनुकूल भूमि हो। विपरीत या ऊसर भूमि में बिना उगे ही पड़ा रहता है। उस प्रकार ये कीटाणु भी बढ़ने तथा रोगोत्पन्न करने के लिये अपने अनुकूल शरीरों को ही चाहते हैं ऐसा कीटाणु-मत-वाले भी मानते हैं।

उपर्युक्त बातें ही ता० २४-४-१४ को डाक्टर पी० एन० शर्मा ने "रिफार्मेशन" मन्दिर में व्याख्यान देते समय कहीं थी "_यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति के दो प्रधान कारण हैं एक

भूमि, दूसरा बीज। भूमि मनुष्य का शरीर, और बीज रोग के कीटाणु। यदि भूमि अनुकूल नहीं है तो बीज नहीं उगेगा। अर्थात् यदि मनुष्य शरीर में अवरोध कारक शक्ति है तो कीटाणुओं से व्याधि नहीं होगी। साधारण रीति से सामान्य अवस्था में यदि शरीर अच्छी तरह स्वस्थ हो तो कीटाणु चाहे हमारे श्वास के साथ भीतर ही क्यों न चले जावें तो भी मरजाते हैं। हमें निश्चय है कि जितने लोग आज इस समय यहां उपस्थित हैं उन में से कोई एक भी ऐसा नहीं है जिन पर उन कीटाणुओं ने आक्रमण न किया होगा। ये विश्वव्यापक हैं। ये मकानों, बस्ती की सड़कों और रेल की गाड़ियों की हवा में रहते हैं। और ऐसी कोई भी जगह नहीं है जहां वे न होते हों। हम सब श्वास द्वारा शरीर में इन्हें ग्रहण कर लेते हैं और तो भी सब प्रकार स्वस्थ रहते हैं॥

यहां पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कीटाणुरूपी शत्रु का क्या हुआ? वह बेमौत मारागया। बीज एक ऐसी भूमि में पड़ा जहां उस का पौधा लग न सका, केवल वे प्रारब्धहीन लोग जिन का स्वास्थ्य बहुत निर्बल है या जिन की छाती बहुत कमज़ोर है। जो मैली गर्द से भरी हुई और स्वच्छ हवा से रहित कोठरियों में काम करते हैं या दुःसाध्य रोगों से ग्रसित हैं या शक्ति से अधिक काम करते हैं उन के शरीर इन कीटाणुओं के लिये उर्वरा भूमि का काम देते हैं"॥

आयुर्वेदीय तत्त्वविद् विद्वानों ने ऐसे निरर्थक बाह्य कारणों की तरफ ध्यान न दिया, उन का लक्ष्य इस बात की ओर रहा कि किन कारणों से शरीर ऐसा बनता है जिस में क्षय रोग उत्पन्न होसके, अथवा यों कहिये कि उस में कीटाणु प्रवेश कर के बढ़ सकें तथा रोग उत्पन्न कर सकें। उन्हों ने ऐसे कारणों को मुख्य समझ कर बाह्य परतन्त्र कारणों की तरफ ध्यान नहीं दिया॥

आयुर्वेदीय प्रसिद्ध ग्रन्थ चरकसंहिता में इस रोग का बड़ा भावपूर्ण विवेचन किया गया है। इस रोग के सम्पूर्ण ४ कारणों को एक छोटे से वाक्य में लिख कर मानो सागर को गागर में भर दिया है। उस में लिखा है- " इह खलु चत्वारि शोषस्यायतनानि" तद्यथा,—साहसं, सन्धारणं, क्षयो, विषमाशनमिति, शोषरोग के निश्चय चार कारण हैं—साहसं, वेगोंको रोकना, क्षय और विषमाशन॥

साहस का व्याख्यान

साहस एक ऐसी शक्ति है जिस के द्वारा साधन शून्य पुरुष भी कठिन से कठिन कार्य करने को कटिबद्ध हो जाता है और उन कार्यों को पूर्ण भी कर लेता है पर ऐसा साहस जिस से हृदय और फुप्फुसों को बाधा पहुंचे वह सब, उर: क्षत जैसे भयङ्कर रोगों का उत्पन्न करने वाला है जो पुरुष बलहीन है वह साहस का समाश्रय लेकर दुरूह मल्लयुद्ध में प्रवृत्त हो जांय अथवा अत्यन्त भारी बोझ को उठाने लगें अथवा अति वेग से धनुष द्वारा बाण फेंकने लगें अथवा अति उच्च स्वर से वेदादि का पाठ करने लगें अथवा उछलने कूदने आदि व्यायाम को अत्यन्त करने लगें अथवा श्री गङ्गादि महा नदियों में अत्यन्त तैरने लग अथवा गिरपड़ने से अकस्मात् जिन के वक्ष स्थल में चोट लग जावे, ऐसे अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करने वाले क्रूर कर्मा पुरुषों के वक्ष स्थल में क्षत हो जाता है उस घाव पर वायु आक्रमण करता है और वहां के कफ को सुखा इधर उधर नीचे तिरछा जाता हुआ फुप्फुस आदि स्थानों में पहुंच अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है।

दुष्ट वायु के कर्म

इस वायु का जो अंश शरीर की संधियों में पहुंचता है उसी से जृम्भा, अंग शैथिल्य और ज्वर उत्पन्न हो जाते हैं। इस वायु का दूषितांश जब आमाशय में पहुंचता है तब ज्वर, हृदय रोग अरुचि और अगाम्लादन हो जाते हैं। जब फुफ्फुस और प्राण-वाही स्रोतों में पहुंचता है तब प्रतिश्याय, कास, श्वास उत्पन्न हो जाते हैं। जब शिरोभूमि में पहुंचता है तब शिरो रोग, उत्पन्न हो जाते हैं। जब कण्ठ में पहुंचता है तब स्वरभंग आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार वक्षःस्थल, कण्ठ, फुफुसों में पहुंच जाने से कास उत्पन्न हो जाता है। और कास में वक्षःस्थल के क्षत के कारण कफ के साथ रुधिर भी थूकने लगता है। तब कफादि दोष और रुधिर के दूषित हो जाने से फुफ्फुस दुर्गन्ध युक्त हो जाते हैं। ऐसे अवसर में वायु आदि के संघात से पर-माणु समान अनेक कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। और शनैः २ मनुष्यों के धात्वादि को खाने लगते हैं जिस से मनुष्य सूखता जाता है इस प्रकार शक्ति से अधिक कार्य लेने वाले साहसी पुरुषों को शोष उरःक्षत उत्पन्न हो जाते हैं और पुनः उस में क्षय के अन्य उपद्रव कुछ असावधानी से हो जाते हैं। जिस से शीघ्र ही यह मनुष्य मृत्यु का ग्रास बनजाता है। कोई २ विद्वान एक मात्र कीटाणुओं को ही क्षय रोग का कारण मानते हैं पर यह उन की दुःशीलता की अदूरदर्शिता है। इस विषय का स्पष्टतया वर्णन आगे किया जायगा।

साहस का व्याख्यान

साहस एक ऐसी शक्ति है जिस के द्वारा साधन शून्य पुरुष भी कठिन से कठिन कार्य करने को कटिबद्ध हो जाता है और उन कार्यों को पूर्ण भी कर लेता है पर ऐसा साहस जिस से हृदय और फुप्फुसों को बाधा पहुंचे वह क्षय, उरः क्षत जैसे भयंकर रोगों का उत्पन्न करने वाला है। जो पुरुष बलहीन हैं वह साहस का समाश्रय लेकर दुरूह मल्लयुद्ध में प्रवृत्त हो जायें अथवा अत्यन्त भारी बोझ को उठाने लगें अथवा अति वेग से धनुष द्वारा बाण फेंकने लगें अथवा अति उच्च स्वर से वेदादि का पाठ करने लगें अथवा उछलने कूदने आदि व्यायाम को अत्यन्त करने लगें अथवा श्री गंगादि महा नदियों में अत्यन्त तैरने लगें अथवा गिरपड़ने से अकस्मात् जिन के वक्षःस्थल में चोट लग जावे, ऐसे अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करने वाले क्रूर कर्मा पुरुषों के वक्षःस्थल में क्षत हो जाता है उस क्षत पर वायु आक्रमण करता है और वहां के कफ को सुखा इधर उधर नीचे गिरता जाता हुआ फुप्फुस आदि स्थानों में पहुंच अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है।

दुष्ट वायु के कर्म

इस वायु का जो अंश शरीर की संधियों में पहुंचता है उसी से जृम्भा, अंग शैथिल्य और ज्वर उत्पन्न हो जाते हैं। इस वायु का दूषितांश जब आमाशय में पहुंचता है तब ज्वर, हृदय रोग अरुचि और अनाम्लावन हो जाते हैं। जब फुप्फुस और प्राण-वाही स्रोतों में पहुंचता है तब प्रतिश्याय, कास, श्वास उत्पन्न हो जाते हैं। जब शिरोभूमि में पहुंचता है तब शिरो रोग, उत्पन्न हो जाते हैं। जब कण्ठ में पहुंचता है तब स्वरभंग आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार वक्षःस्थल, कण्ठ, फुप्फुसों में पहुंच जाने से कास उत्पन्न हो जाता है। और कास में वक्षःस्थल के क्षत के कारण कफ के साथ रुधिर भी थूकने लगता है। तब कफादि दोष और रुधिर के दूषित हो जाने से फुप्फुस दुर्गन्ध युक्त हो जाते हैं। ऐसे अवसर में वायु आदि के संघात से परमाणु समान अनेक कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। और शनैः २ मनुष्यों के धात्वादि को चरने लगते हैं जिस से मनुष्य सूखता जाता है इस प्रकार शक्ति से अधिक कार्य लेने वाले साहसी पुरुषों को शोष उरःक्षत उत्पन्न हो जाते हैं और पुनः उस में क्षय के अन्य ज्वरादिक रूप असावधानी से हो जाते हैं। जिस से शीघ्र ही यह मनुष्य मृत्यु का ग्रास बनजाता है। कोई २ विद्वान एक मात्र कीटाणुओं को ही क्षय रोग का कारण मानते हैं पर यह उन की दार्शनिकता की अदूरदर्शिता है। इस विषय का स्पष्टतया वर्णन आगे किया जायगा।

॥ सन्धारण का व्याख्यान ॥

सन्धारण का अर्थ है धारण करना, प्रश्न होता है किसे धारण करना? कहना पड़ेगा, अधारणीय प्राकृतिक मल मूत्र वायु के आगत वेग को धारण कर लेना अर्थात् जो पुरुष राजा गुरु स्वामी पिता पितामहादि वृद्धों की सेवा में बैठा हो या जिसने पढ़ने में संलग्न हो या स्त्रियों में बैठा हो या ऊंची नीची सवारी मे चल रहा हो, ऐसे समय भय लज्जा आलस्यादि किसी कारण से या प्रसंग की अपूर्णावस्था के कारण जो पुरुष अधोवायु, मूत्र, पुरीष, के वेगों को रोकता है, उन वेगों के रोकने से वायु कुपित हो जाता है और वह प्रकुपित वायु कफ और पित्त को भी प्रकुपित कर शरीर मे ऊपर नीचे तिरछा गमन करता है। और शरीर की सन्धियों में पहुंच मार्गों को अवरुद्ध कर पीड़ा उत्पन्न कर देता है, वह वायु अन्नमण्डल और मलाशय में पहुंच पित्तानुबन्धी हो अतिसारादिक उत्पन्न कर देता है अथवा जब इन ही स्थानो में स्वतंत्र रूप से पहुंचता है तब मलावरोध, आनाह, उदावर्त पैदा कर देता है। दोनों पसलियों और कन्धों में पहुंच शूल उत्पन्न कर देता है। इसी प्रकार आमाशय हृदय, कण्ठ, शिर फुफ्फुस में पहुंच ज्वर, कास, श्वास, रक्तपित्त हृदय रोग, प्रतिश्याय, स्वरभंग और शिरोरोगों को पैदा कर देता है। और दुष्ट रस को अनेक रूपों मे मुख से निकालता है। इस प्रकार नवीन रसादि के न बनने और बने हुओं के बिगड़ने से मनुष्य सूखता जाता है और क्षय रोग युक्त पुकारा जाता है।

ध्यान रखना चाहिये जब वातादि दोष दुष्ट हो आमाशय के आश्रय से ज्वरादिक उत्पन्न कर देते हैं तो मनुष्यों को वही ज्वर बहुत दिन सताये रहता है और पुनः वही ज्वर चिकित्सा के वैपरीत्य से विषम वा जीर्ण हो जाता है। इसी ज्वर से फिर कास उत्पन्न हो जाता है और पुनः वही कास यक्ष्मा तक पहुंचाता है। इसी प्रकार जब वातादि दोष पक्वाशय ग्रहणी आदि का आश्रय लेते हैं तो प्रथम संग्रहणी अतिसारादि उत्पन्न हो जाते हैं तब इन ही रोगों में असावधानी रखने से कासादि भी उत्पन्न हो यक्ष्मा होजाता है। इसी कास में रक्त का भी दर्शन हो जाता है। पर यह सार्वकालिक और सार्वत्रिक नियम नहीं, दोषों के मार्ग पर इस प्रकार की गति नियति निर्भर होती है। इस प्रकार दोष वृद्धि होने से अन्य रोग होकर भी यक्ष्मा उत्पन्न हो जाता है। यक्ष्मा का इस प्रकार उत्पन्न होना क्षय के साथ विषमाशनादि हेतुओं में भी अन्तर्भाव रूप से परिगणन कर लेना योग्य है।

॥ क्षय का व्याख्यान ॥

जो पुरुष शोक और चिन्ताओं से दुश्चिन्तहृदय रहते हैं अथवा जिन के मन को ईर्षा, उत्कण्ठा, भय, क्रोध, आदि सताते रहते हैं अथवा स्निग्ध पदार्थों की तो क्या वहं जिन को भर पेट रोटी भी नहीं मिलती और तिस पर भी अनेक छोटी चिन्तायें खुट खुटाती रहती हैं ऐसे पुरुषों का रस दुष्ट दोषों से क्षीण हो जाता है और पुनः रक्त न बनने के कारण ऐसे पुरुष सूखते जाते हैं। इस प्रकार मनो मालिन्य पुरुषों को क्षय हो जाता है, इस के अतिरिक्त स्निग्ध भोजी यान्नाधारण स्थिति वाले पुरुष जब शक्ति से अधिक मैथुन करते हैं, रमणियों में जो इस प्रकार मदान्ध हो रमण करते हैं जिन को न दिन का ध्यान न रात्रि का ध्यान, मैथुन में न एक बार की गिनती न अनेक बार की गिनती, ऐसे पुरुषों के वीर्य और ओज क्षीण हो जाते हैं। वीर्य के क्षीण हो जाने से मैथुन में वीर्य के स्थान पर रक्त निकलने लगता है, तब वीर्य हीन वीर्य वाहिनी नाड़ियों में दुष्ट वायु घुस मज्जा का सुखाता, अस्थि आदि रस पर्यन्त धातुओं को विलोम क्षय प्रक्रिया से सुखा देता है ऐसे समय यह वायु, पित्त और कफ को भी उदीर्ण कर दोनों पसलियों और कन्धों में वेदना और कण्ठ को विकृत कर देता है। कफ को उत्तेजित कर सिर में भार प्रतिश्यायादि उत्पन्न कर देता है, सन्धियों को पीड़ित कर अंग शैथिल्य, अरुचि उत्पन्न करता है। इस प्रकार दोष त्रय की वृद्धि से ज्वर, प्रतिश्याय, कास, श्वास, स्वरभंगादिक उत्पन्न हो जाते हैं, तब यह पुरुष इन शोषण-कारक उपद्रवों उपद्रुत हो शुष्क होता चला जाता है, इसी का नाम पुन. क्षय युक्त कहा जाता है।

॥ विषमाशन का व्याख्यान ॥

ऐसे भक्ष्य, भोज्य, लेह्यादि पदार्थों का सेवन, जो १ प्रकृति, २ करण, ३ संयोग, ४ राशि, ५ देश, ६ काल और ७ उपयोग संस्था के विरुद्ध हो, विषमाशन कहाता है।

(१) प्रकृति का अर्थ है—स्वभाव, भोजन के समय खाने योग्य द्रव्य प्रकृति का विचार करना, यथा उर्द स्वाभाविक गुरु और मुद्ग स्वाभाविक लघु है, इन में से यथा प्रकृति सेवन करना।

(२) करण—कहते हैं स्वाभाविक द्रव्यों के संस्कार को, यथा शीतल जल ज्वर में सेवन किया हुआ त्रिदोष दूषित करता है। और वही शीतलजल अग्नि द्वारा षोड़शांश अष्टमांश आदि पकाकर सेवन किया हुआ, त्रिदोषघ्न है और ज्वरनाशक है।

(३) संयोग—दो द्रव्यों के मिलने को संयोग कहते हैं, यथा—समान भाग में मधु और घृत खाये हुए विष समान हैं और वेही विषम भाग से खाये हुए अनेक रोगों के नाशक हैं।

(४) राशि—इस का अर्थ है सर्वग्रह और परिग्रह। सर्वग्रह का अर्थ है सब वस्तुओं को इकट्ठा कर समझ लेना, परिग्रह का अर्थ है पृथक् २ वस्तुओं का प्रमाण निश्चय कर लेना। यथा—भोजन आधसेर का लेना इस का नाम सर्वग्रह और इसी में निश्चय करना इतना चून और इतनी दाल खाने में आई है इस का नाम है परिग्रह। राशि के विचार से अनेक लाभ हैं, प्रत्येक विषय में राशि सम्बन्धी विचार करना योग्य है।

(५) देश—अर्थ स्पष्ट है, विचार करना- यहां किन २ द्रव्यों की उत्पत्ति होती है, किन २ वस्तुओं का प्रचार यहां अधिकता से है, यथा—गोधूम खानेवाले देशवासी को निरन्तर तण्डुल सेवन और तण्डुल भक्षी देशवासी को प्रतिदिन गोधूम चूर्ण खाना अहितकारी है।

(६) काल—अर्थ स्पष्ट है, यह दो प्रकार का होता है (१) नित्यग

(२) आवश्यिक। नित्यग ऋतु सात्म्यापेक्षी, और आवश्यिक विकारापेक्षी होता है। अर्थात् आहारादि में ऋतु और विकार के अवसर को देखना योग्य है। यथा- ग्रीष्म ऋतु में द्राक्षा सेवन ऋतु सात्म्य होने के कारण नित्यग है और ग्रीष्म ऋतु के ज्वर में ऋतु वैषम्य उत्पादकपना आवश्यिक है ॥

(७) उपयोगसंस्था-इस का अर्थ है आहारादि के उपयोग का नियम पूर्वक होना। यथा-आहार की अधिकता अजीर्णप्रद है, वैसा न करना, अथवा अजीर्ण में खाया हुआ, रोगप्रद है ऐसा न करना इत्यादि।

(८) उपयोक्ता-उपयोग करनेवाले को कहते हैं, किया हुआ भोजन अच्छी तरह पच गया है इसे जाननेवाला होना योग्य है।

विषमाशन से अन्न ठीक २ नहीं पचता। वात पित्त कफ विषम हो शरीर में फैलने २ स्रोतों के मुख को रोक स्थित हो जाते हैं और पाचकाग्नि का विध्न करते हैं। जब पाचन न होने के कारण रसरक्तादि नहीं बनते। मनुष्य जो कुछ खाता है उस का अधिकतया मलभाग होजाता है, तत्पश्चात् कुपित वायु यत्र तत्र पहुंच अंगमर्द, कण्ठशोष, पार्श्व वेदना, स्वरभेद, प्रतिश्याय आदि को उत्पन्न करदेता है। इसी प्रकार प्रकुपित पित्त दोषानुबन्धी हो ज्वर, दाह, अतिसारादि को पैदा कर देता है। और कुपित हुआ श्लेष्मा दोषानुबन्धी हो प्रतिश्याय, सिर में भारीपन, काश, श्वास, अरुचि, अग्निमान्द्यादि को उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार दोषत्रय की कुपिमे फुप्फुस और हृदय विघ्न हो जाते हैं और काश के साथ ज्वर का भी दर्शन होने लगता है। इस प्रकार रसादि के नवीन न बनने और बने हुओं के क्षीण होने से क्षय होजाता है। यहां यह भी कहदेना योग्य समझते हैं कि अपने २ स्रोतों के योग से धातु धातु द्वारा पुष्ट होते हैं और अपने स्रोतों के रुकजाने से रसादि धातु क्षीण हो जाते हैं।

भारत में क्षयरोग क्यों बढ़रहा है

(देशव्यापी कारण)

आज भारत में जो क्षय का दौर दौरा है इस के देशव्यापी प्रधान कारण, वीर्य्यनाश, दुर्व्यसन, दरिद्रता, नई सभ्यता अपवित्रता और नित्य कर्मों का त्याग आदि हैं।

क्षय रोग और वीर्य्य नाश

वीर्य्यरक्षा की ओर भारत वासियों का बहुत कम ध्यान है। छोटे २ बच्चों का विवाह कर बचपन में ही पावों में बेड़ियां डाल देते हैं। कुसंग में पड़ सेकड़ो बच्चे वीर्य्यनाश करते हैं। आज लाखों युवा नपुंसक बन अपने जीवन को भार रूप समझते हैं। ऐसे थोड़े ही पुरुष होंगे जिन्हें वीर्य्य विकार न हो, दुर्बल वीर्य्य वाले पुरुषों को क्षय के उत्पन्न होने में देरी नहीं लगती। यदि पुष्ट वीर्य्य हो, मनुष्य बलवान हो बचपन से ब्रह्मचारी हो तो कभी क्षयरोग नहीं हो सक्ता।

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जब से भारतवासी दुर्बल, क्षीणवीर्य होने लगे तब ही से भारत में क्षयरोग भारतवों का निर्दयता से क्षय कर रहा है।

महर्षि आत्रेय ने क्षयरोग से बचने के लिये चार बातें सिद्धांत रूप से बतलाई हैं उन के वाक्य बड़े मजबूत हैं और बार २ मनन करने योग्य हैं। उन चार उपदेशों में एक उपदेश यह है।

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयेह्यस्य बहूनरोगान्मरणं वा नियच्छति॥

आहारका अन्तिम परिणामरूपी तेज वीर्य्य है उस वीर्य्य की सब की रक्षा करनी चाहिये। वीर्य्य के क्षय होने पर बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं और मृत्यु तक प्राप्त होती है। आज कल के नवयुवकों को चाहिये कि अपने २ कमरों में इस उपदेश पूर्ण वाक्य को मोटे मोटे अक्षरों में लिखकर टाँग लेवें और श्रद्धा से इसे पढ़ें और अपने सहयोगियों को सुनावे। पढ़ें और सुनावें ही नहीं किन्तु ऋषियों द्वारा बनाई इस दैवी कानून के ऊपर चलें इतना भी ध्यान रक्खें कि वीर्य्य संरक्षण आरोग्य दीर्घायुष्य की कुंजी है। जीवनरूपी महल का आधारभूत दृढ़स्तम्भ है। अथवा सुख पूर्वक जीवन बहलाने को ऊंचा लेजानेवाला सुशोभित वृक्ष है। अनेक रोग रूपी पवन के झपाटे से डगमगाती हुई शरीर रूपी नौका को कालरूपी समुद्र में डूबने से बचाने और स्थिर रखनेवाला मज़बूत लंगर (Sheet Anchor) है, वीर्य्य का एक बिन्दु रुधिर के ४० बिन्दुओं के बराबर है।

जो मनुष्य किसी वस्तु का मूल्य नहीं जानता वह उसे व्यर्थ खर्च कर डालता है। मणि को अज्ञता से कांच समझ फेंक देता है। भारत वासी नवयुवकों को वीर्य्य संरक्षण के लाभ नहीं समझाये जाते। उनको वीर्य्य रक्षा करने और ब्रह्मचारी बनने का उपदेश नहीं दिया जाता। इस से अधिकांश भारतवासी युवा वीर्य्य नाश करते हैं, मैथुन में फंसे रहकर दुर्बल बनते हैं किसी अंग्रेजी विद्वान् ने यह ठीक कहा है।

"The greatest enemy to the health of man, is woman the worst enemy to the health of woman, is man."

अर्थात् पुरुष की आरोग्यता का बड़े से बड़ा शत्रु स्त्री, और स्त्री के स्वास्थ्य को नाश करने वाला कट्टर वैरी पुरुष है।

किसी विद्वान ने कहा है कि मनुष्य शरीर में दिमाग, ज्ञान का भण्डार होने से राजा है। और वीर्य्य राजकोष, इन्द्रियां उस को सलाह देनेवाली पार्लीमेंट की मेम्बर हैं। जिस पुरुष की इन्द्रिया असावधान होती हैं। दुष्ट कार्य्य में फसने की सलाह देती हैं। वे अपने स्वामी को धोखा दे राजकोष का द्रव्य लुटवा देती हैं। राजकोष में कमी होने से दिमाग भी कमजोर होता है। तथा शरीर के अंग प्रत्यंग भी निर्बल रहते हैं। रक्त का कोष हृदय और फेफड़े भी दुर्बल हो निकलते हैं, जठराग्नि मन्द पड़ जाती है ज्ञान तन्तु निर्बल हो जाते हैं। इस से मनुष्य में इतना बल नहीं रहता जो बाहरी रोगोत्पादक जन्तुओं को रोक सके।

आजकल आधे से अधिक क्षयरोगी ऐसे देखने में आते हैं जिन्हें पहले वीर्य्य विकार था। किन्तु उस की चिन्ता न कर मैथुन कर्म में फसे रहते थे। जिस से शरीर और फेफड़े दुर्बल होने लगे। पीछे सहसा प्रतिश्याय होगया, प्रतिश्याय (जुकाम) में भी मैथुन करना न छोड़ा। इस से खांसी भी आगई। साथ में ज्वर की मन्द गरमी भी रहने लगी इस अवस्था में भी वीर्य्य का अपव्यय बन्द न किया गया जिस से अन्त में वह क्षय का शिकार बनना पड़ा। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में लिखा है :—

" प्रतिश्यायादथो कास कासात्सञ्जायते क्षय " अर्थात् जुकाम से खांसी और खांसी से क्षयरोग उत्पन्न हो जाता है। यह बात आजकल के नवयुवकों में प्रत्यक्ष देखी जारही है।

यदि भारत में क्षयरोग से होनेवाली शोचनीय मृत्यु संख्या को कम करना चाहते हो। तो नवयुवकों की वीर्य्य रक्षा की ओर ध्यान दो, उन को ब्रह्मचारी बनाओ यदि आज के समान वीर्य्य नाश रहेगा तो क्षय का इसी प्रकार डंका बजता रहेगा और उस के संग्राम को रोकने में किसी की चींचपड़ न चलेगी।

मादक पदार्थों का सेवन भी आज बड़ी अधिकता से हो रहा है, बड़े २ धनिक छिप छिप कर या प्रगटरूप से शराब के प्याले गट गटाते हुए भारत का गला घोटते हैं। कोकेन की खातिर अनेक युवा अपना काला मुंहकर शरीरों का सत्यानाश करते हैं। तमाखू का पीना तो आजकल जेन्टिलमैन का गुण समझा जाता है, जेन्टिलमैन बनने के लिये तो इस की परमावश्यकता है, घड़ी घड़ी पर चुरट के बिना काम नहीं चलता, अपने बराबर वाले इष्ट मित्रों का आदर नहीं होता, पण्डितों को भी इस की आवश्यकता होती है। क्योंकि कम से कम ६ माशे हुलास की नाक में ठूसे बिना कोई काशी का पण्डित नहीं हो सकता।

यदि रईस, उमराव, ताल्लुकेदार पान में तमाखू न खावें तो इन पीकदान बनानेवालों की फिर ज़रूरत ही न रहे। स्वदेशी कारीगरी को महती हानि पहुंचे। भंग, चरस गांजा ये चीज़ तो योगियों के भूषण हैं, शिवजी की प्यारी हैं, इन्हें छोड़ना तो एक प्रकार का पाप है, चण्डू, मदक, अफीम ये शौक नवाबों का खुशकरने वाले हैं। जिस देश में ऐसे विचार वाले पुरुष हों, सब श्रेणी के पुरुष दुर्व्यसन में फंसे रहते हों, वहां क्षय का डंका बजे तो आश्चर्य ही क्या है। इन मादक पदार्थों के सेवन से भारत वासियों के फेफड़े निर्बल होगये हैं, जिस से तत्काल यह बीमारी असर करजाती है। इन कारणों के बिना मिटाये क्षय रोग का आधिपत्य कम नहीं हो सकता।

दरिद्रता | दरिद्रता भी क्षय का प्रधान देशव्यापी कारण है। आज बड़े २ धनिकों का पेट खाली है। ऊपर से टीमटिमाक बन रहा है, मोटरें दौड़ रही हैं, परन्तु भीतर ही भीतर चिन्ता, शोक की अग्नि धधक रही है, ऐसे पुरुषों को अवश्य क्षय होगा चाहे वे कैसी ही हिफ़ाज़त करें, इन कीटाणुओं से बचने के लिये कितने ही थूकदान रक्खें परन्तु वे बच न सकेंगे। जिन पुरुषों को पेट भर अन्न खाने को नहीं मिलता ऐसे पुरुषों की भी यहां कमी नहीं है, प्रतिवर्ष किसी न किसी प्रदेश में अकाल की कृपा हो जाती है, ऐसे पुरुषों के निराहार रहने से रक्तादि धातु नहीं बनते जिस से क्षयरोग उन पर आक्रमण कर और भी दुःख देता है।

क्षयरोग और नई सभ्यता | नई सभ्यता भी भारतवर्ष में क्षय का बाज़ार गर्म कर रही है। जिस सभ्यता के रंग में प्रति क्षण अन्धे भारतवासी रंगते चले जा रहे हैं, वह ही इस दुष्ट रोग का पालन पोषण कर तिल का पहाड़ बना कर दिखा रही है वह नई सभ्यता क्या है? बनावटी सुधार, पश्चिमीय गुणों को छोड़ दुर्गुण दुर्व्यसन का प्रचार। हा! प्राचीन काल के मेधावी, तेजस्वी, ब्रह्मचारियों की छटा तीस कोटि भारतवासियों में से तीन सौ नवयुवकों में भी दिखाई नहीं देती। आजकल कौन सभ्य शिरोमणि है? जो अपने शरीर को परिश्रम नहीं देता, एक फर्लांग भी पावों चलना पसन्द नहीं करता, चार बातें करते ही मुखमण्डल पर मुक्ता समान स्वेद बिन्दुओं को चमका कर अपनी कोमलता दिखाता है, चार सीढ़ी चढ़कर ही साठ वर्ष के बूढ़े के समान हांफने लगता है, घंटों साबुन के फेन से अपने शरीर को रिगड़ता है और फेन समान मुलायम शय्या पर सोना पसन्द करता है। जिसे बालों के काढ़ने और जूतों की सफ़ाई कराने में अपने बहु

मूल्य समय का अधिक भाग देना पड़ता है। तात्पर्य्य यह कि नये नवयुवकों के मस्तिष्कों में यह बात समाई हुई है कि शरीर को बहुत नाजुक, सुकुमार बनाना और इस ढंग से रहना कि जिस से सहयोगी मित्र मण्डली को कहीं अपनेमें पुराना गवांरपन न मालूम देवे, नई सभ्यता है। इस नई सभ्यता में नई शिक्षा से भूषित कोई विरलाही माँ का लाल होगा जो न फँसे।

ऐसे नई रोशनी वाले ही क्षयरोग की क्षुधाको शान्त करने के लिये आहार बनजाते हैं। जो मनुष्य कुछ परिश्रम करते हैं, व्यायाम करते हैं, शरीर को कुछ परिश्रमशील और दु:ख सहने योग्य बनाते हैं, ऐसे पुरुषों को इस रोग के झपाटे में आने में चार घड़ी लगती हैं। नवयुवकों को धार्मिक और स्वास्थ शिक्षा न मिलने से वे वीर्य्य रक्षा की तरफ भी किञ्चिन्मात्र ध्यान नहीं देते, जिस से दूषित वीर्यवालों को क्षयरोग होने में देरी नहीं लगती।

स्त्रियों में भी यह नई सभ्यता घुस पड़ी है। पानी लाने के लिये बर्तन मांजने के लिये कहार; रसोई पकाने के लिये रसोईदार जिस के घर न हों वह ही बस घटिया, निर्धन और मट्टा पुरुष है। नई सभ्यता स्त्रियों को इस बात के लिये मजबूर कर रही है कि वे हाथपर हाथ रख के बैठी रहें या टूटी फूटी हिन्दी पढ़ उपन्यासों की उपासना करें और कमल को भी लज्जित करनेवाला अपना कोमल शरीर बनाकर अपने अबला नामको चरितार्थ करें। कौन ऐसा नया सभ्य होगा जो अपनी स्त्रियों को भद्दी पुरानी चाल में पड़ी रखना पसन्द करता हो, गांवों के देखे शहरों में नई सभ्यता का अधिक प्रभाव है। वहां पर अधिकतर युवा इस के भक्त हैं। थोड़ा ही समय हुआ हमको एक शहर में नये सभ्य मिले, और उन्होंने कहा कि वैद्य-

जी ! चार महीने से मेरे शिर में बड़े ज़ोर से दर्द हुआ करता था और इस दर्द का कारण बहुत खोजने पर यह निकला कि पहले मैं अपने सिर के नीचे " सुरखाब के परों का तकिया " लगाया करता था उसे न लगाकर रुई का तकिया लगाने लगा, ऐसे २ सुकुमार युवकों की शहरों में कमी नहीं है । शहरों के देखे गावों में क्षयरोग से कम रोगी होते हैं, इसके कई कारणों में एक कारण यह भी है कि वहां नई सभ्यता का रंग कम जमा है । इस विषय में डाक्टर विल्सन ने कहा है ।

In towns three times as many people die from consumption than is the case in the country. The explanation of this fact is to be found in the difference in the habits of town and country dwellers.

अर्थात् गावों के देखे शहरों में क्षय से जो तिगुने आदमी मरते हैं इस विषय का मुख्य कारण यह है कि गांव और शहरों के रहनेवाले पुरुषों के रहन सहन में बहुत बड़ा अन्तर होता है॥

गांव वाले सम्पूर्ण दिन खुली हुई पवित्र हवा में श्वास ले सकते हैं, वहां मकान इतने ऊंचे और घने नहीं होते जिन में शुद्ध हवा और रोशनी न आसके । किसी दूसरे गांव या किसी मित्रसे मिलने को जाने के लिये रेलवे, ट्राम, मोटर की सवारी नहीं मिलती जिससे उन्हें कुछ परिश्रम कर के जाना पड़ता है, खुली हवा और सूर्य्य का प्रकाश भी साथ ही साथ मिलता है । वे अपने जीवन को सादगीके साथ व्यतीत करते हैं, रोकड़ा पैसा पास न होने से गांजा, भांग, दारू, ताड़ी आदि पीने की लालसा भी कम होती है । कपड़ा मोटा पहनते हैं ।

श्रौर खाना सादा खाते हैं जिस से उनका शरीर बलिष्ट रहता है फैफड़े मज़बूत होते हैं।

शहर वाले ऐसी गलियों में, जहाँ घने ऊंचे मकान, तंग रास्ता श्रौर दर्वाज़े पर ही पाखाने होते हैं, रहते हैं। मकान का किराया मंहगा होने से थोड़ी जगह में बहुत से आदमियों को रहना पड़ता है रात्रि में मकान को बन्द कर के सोते हैं। मिल, जीन, प्रेस, श्रादि कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को खुली हवा नहीं मिलती प्रत्युत तेल, ग्यास का धूंत्रा कोयला के रजकण, रुई का रूंत्रां उन के श्वास के साथ जाता रहता है। इस से फैफड़ों श्रौर श्वास नलिका में गर्द जम जाती है। मज़दूर लोग अपनी पाई हुई मज़दूरी को दुराचारों में खर्च करते हैं। बड़े आदमी अपना वैभव श्रौर रईसीपन दिखाने के लिये बड़े २ ठाठ से रहते हैं। सैकड़ों रईस तो ऐसी नवाबी, नज़ाकत दिखाते हैं कि पाखाने से आने पर अपने हाथों से पैरों को भी नहीं धोते, जुराब तक नौकर ही पहनाते हैं। अपना जीवन वेश्या सहवास से सार्थक समझते हैं। मादक पदार्थों को सेवन कर दिन में आंखें मीचे हुए योगियों का स्वांग दिखाते हैं। इन कारणों से शहर वालों के शरीर" बताशे के मकान" कहाने वाले होते हैं। और फैफड़े निर्बल होते हैं अतएव क्षय रोग इन लोगों को इन के किये का फल चखाता है।

पहले समय में स्त्रियों को अपने २ घर में अनेक काम करने पड़ते थे। पानी खींचना, चून पीसना, रोटी पकाना आदि, जिस से उन का शरीर पुष्ट और फेफड़े मज़बूत रहते थे। जिन देशों में श्राज भी इन कामों के करने का रिवाज है उन देशों की स्त्रियां बहुत मज़बूत हैं तथा उन की सन्तति भी अच्छी होती है, डाक्टर एन्ड्रस्टन, एम० डी० लिखता है कि "There is a great

advantage of carrying burdens on the head to prevent consumption" अर्थात् शिर के ऊपर उठाकर बोझा रखना क्षय रोग के न होने देने के लिये बहुत लाभ दायक है। किन्तु आज कल शहरों की तथा ऊंची जाति की स्त्रियां शारीरिक परिश्रम करने में अपना अनादर समझ त्यागती जाती हैं। इस से अब स्त्रियां भी क्षयरोग से अधिक पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त होती हैं।

सारांश यह है कि क्षयरोग फेफड़े की बीमारी है, और उस से बचने के लिये फेफड़ों का बलिष्ट रखना परमावश्यक है। फेफड़े बिना परिश्रम तथा उचित व्यायाम किये ठीक नहीं रह सकते आज कल की सभ्यता हमको दीर्घ सूत्री आलसी बनाती है इस से भारत के नवयुवकों को अपनी पुरानी सभ्यता न छोड़ कर परिश्रमशील बनना चाहिये।

भारत के सुपुतो! भारत को पूर्ण सुखी, सर्वोच्च सिंहासन पर विराजमान करने की कामना करनेवाले कमनीय कान्ति नवयुवको! यदि आपलोगों में सच्चे सुधारों की, और भारत को पूर्ण निरोगी रखने की कांक्षा है तो अपनी इस नई सभ्यता की जांच करो अपने सुखों को दर्पण में देखकर प्राचीन समय के एक श्रम के सुख से मिलान करो, प्रोफेसर थीकमैन के शिक्षाप्रद इस लेख को ध्यान से याद रखना :—

"My advice is do not to make the foolish mistake of taking it for granted that your lungs are in perfect condition, and that it is not necessary to give them any special care. In reality you are walking on the edge of

precipice. Bear this in mind. It is utterly impossible that your lungs should be in good condition unless you give them abundent exercise. Remember it is the one organ in the body that demands continual exercise in order that it may remain healthy. Remember that it is the organ that would show the result of the lack of exercise first, even in the best specimen of manhood that ever lived. Therefore if you do not practise breathing regularly, you may be positive that your breathing power is deficient even though your chest may be as large as that of a Somson and your health every-thing that you might desire. If more people realized the truth of the foregoing statement the death rate from pneumonia and consumption would be reduced one half in less than a year.

अर्थात् मेरी सम्मति ऐसी है " कि हमारा फेंफड़ा ठीक हालत में है और उनके विषय में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है " ऐसी मूर्खता भरी भूल तुम को नहीं करनी चाहिये। सच पूछो तो एक ऊंचे स्थान के किनारे पर (जिसपर से थोड़ी सी भूल से मनुष्य गिरजाता है) तुम चलते हो ऐसा ध्यान रक्खो। फेंफड़ों को पूरी कसरत दिये बिना उन को स्वास्थ्य दशा में रखना बिल्कुल असम्भव है। याद रक्खो कि सम्पूर्ण शरीर में फेंफड़ा मरण का एक ऐसा भाग है कि जिसे निरोग

रखने के लिये कसरत देने की विशेष आवश्यकता है। ध्यान रक्खो कि अबतक अच्छी से अच्छी स्थितिवाले पुरुष के शरीर में भी कसरत न करने के दुष्ट परिणाम को सब से पहले बतानेवाला यह फेंफड़ा ही है। इस से जो तुम्हारी छाती सैमसन पहलवान के समान भी विशाल हो और तुम्हें अपनी आरोग्यता में कोई त्रुटि न मालूम पड़ती हो तो भी जो तुम नियमानुकूल प्रतिदिन दीर्घ श्वास लेने की क्रिया नहीं करते तो यह ठीक मानना कि तुम्हारे फेंफड़ों की क्रिया दोष भरी हुई है। ऊपर कहा हुआ उपदेश भजाबर्ग का बड़ा समूह कर निकले तो निमोनिया और क्षयरोग से होने वाली मृत्यु एक ही वर्ष में आधी रहजावे।

क्षयरोग और अपवित्रता — पश्चिमीय विद्या के प्रभाव से भारत वासियों की छूतछात, और नित्य कर्म एक ढकोसला समझे जाने लगे हैं। खाने पीने में चौका चूल्हे का विचार बहुत भद्दा गिना जाता है। होटलों, और तन्दूरखानों का रिवाज बढ़ रहा है तन्दूरखानों में सामान उत्तम नहीं बनता। चून के साथ सुरैरी, मच्छर, कंकड़ी और रेती आदि मिले रहते हैं। पानी साफ नहीं होता। चून माड़ना रोटी सेकना आदि सब ही विधि हीन कार्य्य होते हैं। चौके का स्थान अति सर्वदा दुर्गन्धित होता है। चौके की मोरी अति गन्दी होती है। इस प्रकार सब प्रकार से दुर्गन्धित वायु होजाता है। अनेक मनुष्यों का समागम से भोजन होता है। और उन में कभी २ ऐसे मनुष्य भी आ मिलते हैं, जिन्हें दाद, खाज, कुष्ट, कफ विकार आदि संक्रामक रोग होते हैं। जिन के संसर्ग से एक से दूसरे को रोग लग जाता है॥

धन्य है उन महर्षियो को जो भोजन विधि इस प्रकार से बतला गये हैं कि मनुष्य को स्वयं पाकी होना चाहिये, अथवा गृह की स्त्री के हाथ से ही बनाहुआ भोजन खाना चाहिये। इस नियम में कैसी दूरदर्शिता है। शरीर ही मोक्ष का साधन है उस शरीर का पोषण भोजन से होता है। अतएव भोजन जहांतक हो सके उत्तम और पवित्र होना चाहिये। उत्तम भोजन से शरीर और मन दोनों स्वस्थ और सतोगुणी होंगे। विकार युक्त अस्वच्छ भोजन शरीर को रोगी और मन को मैला बना देगा। इस ही सिद्धान्त को लेकर पहले ऋषियों ने चौका की रीति निकाली है। यदि भोजन घर में बनेगा तो चौका की शुद्धि, अन्न की शुद्धि, और अपने शरीर की शुद्धि आदि सब अनुकूल होगा। साथ में भोजन करने वाले भी प्रायः समान स्वभाव वाले मिलेंगे। चौका होने से एक दूसरे में संक्रामता न होगी। शुद्ध जल वायु की प्राप्ति होगी॥

क्षयरोग और नित्य कर्म्म का नाश

ऋषियों ने नित्य कर्मों की सृष्टि भी बड़े विचार से की थी, जिसका पालन करने से अन्य रोगों के समान क्षय रोग भी अधिक नहीं होता था। सदाचार का पालन करते हुए पूर्वज मनुष्य बलवान् और सुखी रहते थे। किन्तु इस समय भारत वासियों का नैत्यक कर्म्म प्रायः नष्ट हो चुका। उषः काल उठना, गौ सेवा करना, प्रातः सायं हवन करना, बलिवैश्व देव, ईश्वर का स्मरण, वस्त्र शुद्धि, स्नान, अछूत जातियो का अस्पर्श, दूषित पुरुषों की छाया से भी बचना प्रत्येक व्यवहार में स्पर्शा-स्पर्श का विचार, स्वच्छजलपान, सत्य भाषण, ब्रह्मचर्य्यव्रत, व्यायाम आदि कर्म्म भारत से विदा होकर न मालूम किस कन्दरा में पड़े हुए हैं। ये ढकोसला भरी बातें नहीं हैं किन्तु इन बातों में परमतत्व भरा हुआ है। उषः काल उठने से निद्रा

यथा प्रमाण होगी, आलस्य न होगा, प्रातः काल की सर्वांग पुष्टिकारी वायु मिलेगी, गो सेवा से शारीरिक दुष्ट वायु का ह्रास होगा। गौके गोबर और मूत्र से मकान शुद्ध रहेगा, शुद्ध दुग्धघृत दधि खाने को मिलेंगे, जिस से शरीर पुष्ट होगा। बाज़ारू विकार युक्त चीजों से छुटकारा मिलेगा। ईश्वर भक्ति से, मन पवित्र, और आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि होगी, लोभ ईर्षा आदि दुर्गुण दूर होंगे, वस्त्रो की शुद्धि और स्नानादिकों से शारीरिक स्वच्छता रहेगी। शरीर के भीतर स्रोतों द्वारा शुद्ध वायु प्रविष्ट होगा। छूत अछूत के विचार से संक्रामक रोग एक से दूसरे पर आक्रमण न करेंगे। हवन बलिवैश्वदेव आदि से श्रौत स्मार्त कर्म्मों के साथ २ गृहशुद्धि भी होगी। प्राणायाम संध्या से भीतरी दुष्ट वायु बाहर निकल जायगी। अधिक क्या कहें महर्षियों के प्राचीन नियम पूर्ण विज्ञान से भरे हैं, उन के नाश होने से ही आज क्षय के समान संक्रामक रोगों की अधिकता होरही है॥

(५) मैं पहले फ़ौज में नौकर था—परिश्रम खूब करता घोड़े पर मीलों दौड़ता—घोड़े के पीछे भागता। एक समय मुझे सर्दी होगई और मैंने उसकी परवा न की, और घोड़े से फिर भी काम करता रहा, अब मेरी छाती दुखती है, और गले में धूआंसा उठकर खांसी आती है, जिस के साथ खून आता है, शरीर दिन पर दिन सूखता है छाती का दर्द चैन नहीं लेने देता।

(६) मुझे प्रमेह होगया था—जो बरसों रहा—बीच २ में जुकाम होने लगे। पेशाब के साथ सुफेदी आने लगी—चहरा मेरा सुफेद पड़गया—पीछे खांसी होगई। खांसी कभी २ उठती है परन्तु ज्वर की गरमी हो आती है, इस से हाथ पांव और आंखों में जलन रहती है। भूख दिन प्रति दिन गिरती जाती है।

(७) मैं बहुत भोजन करता हूं परन्तु तो भी रहता हूं दुबला हो—रहा मुझे स्वप्नदोष होता है। चहरा पीला पड़गया है। रात्रिको दो एक दस्त भी होजाते हैं—खांसी भी रहने लगी है॥

(८) मुझे प्रदर हो गया था—इस की चर्चा मैंने गुप्त रक्खी शरीर मेरा गिरा पड़ा रहता परन्तु काम करना मैंने नहीं छोड़ा, पीछे ज्वर आगया। अब खांसी भी है मुझे ६ महीने होगये।

(९) मेरे एक बच्चा हुआ—उस समय न्हाने धोने से सर्दी होगई, जिस में ज्वर आगया—मैंने कुछ ध्यान न दिया, बीच बीच में ज्वर छूटता भी रहा, अब मैं उठ बैठ नहीं सकती; ज्वर, खांसी, श्वास सताते हैं [illegible]

❀ क्षय के पूर्वरूप ❀

क्षय के पूर्वरूप– छींक आना, जुकाम ज्यादा होना, बार २ कफ निकलना, मुख मीठा २ रहना, अरुचि, निर्दोष पदार्थों में दोष दर्शन, भोजन के पश्चात् हल्लास अथवा वमन, मुख का सूजना, हाथों का बार २ देखना, नेत्रों का श्वेत होना, भुजाओं मुटाई जानने की इच्छा करना, स्त्रियों से रमण करने की, निर्बल भी होने पर भी, अधिक इच्छा होना, घृणा होना, शरीर का भयंकर दीखना, स्वप्न में सूखे जलाशय, शून्य नगर और शुष्क वन दीखना तथा टूटे वृक्ष, और मयूर बन्दर, सर्प, कौआ, घुग्घू आदि दीखना; बाल, हड्डी और अंगारों के ढेर, दीखना; ये सब रोग यक्ष्मा के पूर्व रूप शास्त्रों में वर्णित हैं।

❀ पूर्व रूप में ऐसे लक्षण क्यों होते हैं ❀

(१) प्रतिश्याय आदि– मस्तिष्क शक्ति के बिगड़ने से तथा वीर्य्य विकार अनित निर्बलता से ॥

(२) अन्न में अरुचि आदि– आमाशय के बिगड़ जाने से ॥

(३) हाथों का बार २ निरीक्षण –मनोवृत्ति के बिगड़ने से, तथा शारीरिक दुर्बलता का मन के ऊपर सहसा प्रभाव पड़ने से ॥

(४) दुःस्वप्नों का दीखना — धातुओं की कमी के कारण तथा भावी भयंकरता प्रतीत होने से ॥

त्रिदोषवाद— आयुर्वेदीय शास्त्रों में प्रत्येक रोग के प्रधान कारण दोष माने हैं। दोषों की दुष्टि से रोग और यथा प्रकृति होने मे स्वास्थ्य होता है। त्रिदोष विज्ञान बड़ा महत्व पूर्ण विषय है और हमारी चिकित्सा का गौरव स्वरूप है।

डांक्टर लोगों के समान हमारे यहां अप्रधान कीटादि अनेक कारणों को न मानकर सब रोगों के कारणों को तीन दोषों में ही लीन कर दिया है। इस विज्ञान तक अभी डाक्टर लोग नहीं पहुंचे हैं। निरपेक्ष पश्चिमीय विद्वान अब इस दोष विज्ञान की बड़ी प्रशंसा करते हैं। दोष विज्ञान सम्बन्धी एक अध्याय इस के पीछे ही पाठक पढ़ेंगे इस से आयुर्वेदीय दोष विज्ञान की गौरवता और विज्ञता जान सकेंगे।

दोष भेद से लक्षण — स्वर भेदो निलात् शूलं संकोचश्चांस पार्श्वयोः ॥

ज्वरो दाहो तिसारश्च पित्तात् रक्तस्यचागमः।
शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तश्छन्दरेवच ॥
कासः कण्ठस्य चोद्धंसो विज्ञेयः कफ कोपतः।

यक्ष्मारोग के ग्यारह लक्षण हैं उन में वात की अधिकता से स्वर भेद, कंधे और पसवाड़ों में खिचाव, शूल, पित्तकी अधिकता से ज्वर, दाह, अतिसार और खून आना, कफ की अधिकता से शिर भारी रहना, अरुचि, खांसी और कण्ठ में फांसे सी पड़ना ये लक्षण होते हैं।

कारण भेद से शोष भेद और उन के लक्षण,

कारण और लक्षणों के भेद से शोष के व्यवाय शोष, शोक शोष आदि कई भेद शास्त्रों में कहेगये हैं। इन में त्रिदोष के समस्त लक्षण नहीं होते तौ भी ये धातुओं को क्षय करने वाले होने से क्षय ही कहे जाते हैं पृथक २ लक्षण ये हैं।

(१) व्यवाय शोष के लक्षण

व्यवाय शोषी शुक्रस्य क्षयलिंगैरुपद्रुतः।
पाण्डु देहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः।

व्यवाय (मैथुन) करने से जो शोष होता है उस में शुक्र क्षय के लक्षण अर्थात् लिंग और अण्ड कोषों में पीड़ा, मैथुन में अशक्ति, मैथुन में अबल तथा अनेक बार वीर्य्य निकलना, आदि होते हैं शरीर पीला पड़जाता है पीछे वायु द्वारा मज्जादि यथा पूर्व धातुओं का क्षय होता है।

(२) शोक शोष

अध्यान शीलः स्रस्तांग-शोकशोष्यपि तादृशः

शोक शोषी पुरुष जिस वस्तु का रंज होता है उस के ही ध्यान में रहता है, इस से अंग शिथल हो जाते हैं तथा शरीर में पीलापन आदि व्यवाय शोषी के समान लक्षण भी होते हैं।

❀ वार्धिक्य शोष ❀

जरा शोषी कृशो मन्दवीर्य्य बुद्धि बलेन्द्रियः ।
कम्पनो रुचिमान् भिन्नकांस्य पात्र हतस्वरः ॥
ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारतिपीडितः ।
संप्रस्रुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः ॥
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥

जो मनुष्य बुढ़ापे के कारण सूखता है उसके ये लक्षण होते हैं– शरीर कृश और वीर्य्य, बुद्धि, बल, इन्द्रिय ये मन्द हो जाते हैं, कम्प, और अरुचि होते हैं कांसे के फूटे पात्र के समान आवाज होजाती है, बिना कफ के थूकता है। भारीपन और शरीर में दुखन होती है, मुख, नासिका, और आंख से पानी गिरता है दस्त सूखा, और शरीर रूखा होता है - गात्र व अवयव सो जाते हैं, मुख क्लोम, गला ये सूखा करते हैं ॥

॥ अध्व शोष ॥

अध्व प्रशोषीस्रस्ताङ्गः संभृष्ट परुषच्छविः ।

अधिक मार्ग के चलने से जो क्षय होता है उस में अंग शिथिल हो जाते हैं तथा शरीर की कान्ति अग्नि में भुने पदार्थ के समान अर्थात् श्यामता लिये हो जाती है ॥

॥ व्यायाम शोष ॥

व्यायाम शोषी भूयिष्ठ मेभिरेव समन्वितः ।
लिंगै रुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥

व्यायाम शोष में प्राय अध्व शोष के समान लक्षण होते हैं तथा विना क्षते के भी उर:क्षत के लक्षण हो जाते हैं ॥

॥ व्रण शोष ॥

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् ।
व्रणितस्य भवेच्छोषः सचासाध्य तमोमतः ॥

व्रण वाले का शोष- रक्त के क्षय होने से, व्रण की पीड़ा से, तथा आहार घट जाने से उत्पन्न होता है और यह असाध्य है ।

॥ उरः क्षत ॥

उरो विरुज्यते ऽत्यर्थं भिद्यतेथ विभज्यते ।
प्रपीड्यते च तथा पार्श्वे शुष्यत्यंगं प्रवेपते ॥
क्रमात् वीर्य्यबलं वर्णो रुचिरग्निश्चहीयते ।
ज्वरो व्यथा मनो दैन्यं विड् भेदो ऽग्निवधस्तथा

दुष्टः श्याव, सदुर्गन्धः पीतो विग्रथतो बहु ।
कास मानस्य चाभीक्ष्णं कफः सास्टक प्रवर्तते
स क्षीयते ततोऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसो क्षयम् ॥

।। अत्यन्त साहसजन्य कार्यों से उत्पन्न होता है जिस में रोगी की छाती बड़ी दूखती है, ऐसा मालूम होता है कि छाती को कोई विदीर्ण करता है अथवा दो टुकड़े किये डालता है । पसलियों में दर्द, सम्पूर्ण अंगों का सूखना, तथा कम्प होता है। क्रम से वीर्य्य, बल, वर्ण, रुचि, और जठराग्नि कम होते जाते हैं । ज्वर की व्यथा, मनकी दीनता, दस्त का पतलापन, अग्नि का नाश ये होते हैं, खांसी के साथ, दूषित, कालापन लिये, दुर्गन्धित, पीला, गांठदार बहुतसा रुधिर युक्त कफ आता है । रोगी वीर्य्य और ओज के क्षय हो जाने से निरन्तर क्षीण होता जाता है ॥—

| क्षय के साध्यासाध्य लक्षण |

सर्वै रर्द्धे स्त्रिभिर्वापि ।
लिंगैर्मांसबल क्षये ॥
युक्तो वर्ज्य श्चिकित्स्यस्तु सर्व रूपोप्यतोन्यथा ॥
महाशनं क्षीयमाणं मतीसार निपीडितम् ।
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत ॥
शुक्लाक्षमन्न द्वेष्टारमूर्ध्वश्वास निपीडितम् ।
कृच्छ्रेण बहुमेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥

अर्थात्—

जिस रोगी के मांस और बल क्षीण होगये हों उस के सम्पूर्ण आधे या तीन ही लक्षण क्यों न हों परन्तु वह असाध्य है। और मांस और बल मौजूद होने पर चाहें सम्पूर्ण लक्षण हों परन्तु चिकित्सा के योग्य है। (१) जो क्षय रोगी अधिक भोजन करने पर भी क्षीण होता जावे जो अतिसार से पीड़ित हो, जिस के आयड कोप और उदर पर सूजन हो उस की चिकित्सा न करो। जिस क्षय रोगी के नेत्र सुफेद हों, अन्न में अरुचि, श्वास, मूत्रकृच्छ्र हों वह असाध्य है॥

ज्वरानुबन्ध रहितं बलवन्तं क्रियासहम् ।
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥

जो रोगी ज्वर रहित, बलवान, क्रियाओं के सहने वाला, दीप्ताग्नि और जटा हुआ न हो उसे साध्य जान चिकित्सा करे॥

अवधि परि दिनं सहस्रंतु यदि जीवतिमानवः।
सुभिषग्भिरुपक्रान्त स्तरुणाः शोषपीडितः॥

जो क्षय रोगी हजार दिन तक भी जीता रहे तो जानो कि रोगी तरुण है और इस की अच्छे वैद्यों से चिकित्सा की गई है। तात्पर्य यह है कि अधिक से अधिक हजार दिन क्षयरोगी यदि बीच में आराम न हुआ हो तो जीवित रह सकता है॥

❀ दोष विज्ञान ❀

आयुर्वेद का दोष विज्ञान बड़ा महत्व पूर्ण विषय है इसे समझ लेना वैद्यों का आवश्यकीय कर्त्तव्य है। सम्पूर्ण संसार पञ्च तत्वमय है। और पञ्चतत्वों के गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध भी सबत्र दीख पड़ते हैं। पञ्चतत्व शब्दादितन्मात्राओं से और तन्मात्रा अहंकार से अहंकार प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। वास्तव में ये सब प्रकृति के कार्य रूप हैं। प्रकृति सत्व, रज, तम, इन तीन गुणों वाली है। ये तीन गुण ही रूपान्तर से तीन दोष कहाते हैं। इन का विवेचन बड़ा कठिन है हम यहां पर तृतीय वैद्य सम्मेलन के सभा पति श्रीमान् गणनाथ सेन जी के भाषण से त्रिदोष विज्ञान सम्बन्धी तात्विक विवेचन उद्धृत करते हैं।

शारीर क्रिया विज्ञान में त्रिदोषतत्व आयुर्वेद का एक अमूल्य रत्न है मानसिक क्रिया विज्ञान के लिये सत्व रज तम ये त्रिगुण हैं वसे ही शारीर क्रिया विज्ञान के लिये वातादि तीन दोष हैं। इस विषय के मर्मों को न समझ या समझ लोग आयुर्वेद पर मिथ्या आक्षेप किया करते हैं। परन्तु हमको आशा है कि कभी वह दिन आवेगा जब कि आयुर्वेद के इन तत्वों के विषय में सूक्ष्म दृष्टि जगत के सब ही विद्वानों के चित्त में सत्य कल्पना प्रस्फुरित होगी।

इस समय वायु का अर्थ (Wind) विंड (हवा) पित का अर्थ बाइल अर्थात् पीले रंग का का तरल पदार्थ विशेष,

और कफ का अर्थ बलगम समझ कर ही लोग आयुर्वेद की अप व्याख्या करते हैं। वास्तव में त्रिदोष तत्वों से शरीर की स्वाभाविक क्रियाओं के तथा शरीर की विकृत अवस्था की क्रियाओं के एवं चिकित्सा में भेषज प्रयोग करने के जो अपूर्व नियम बंधे हैं इन नियमों के एक बार समझने से महर्षियों का दिव्य ज्ञान देख कर सभी को विस्मित एवं मुग्ध होना पड़ता है।

प्रथमतः स्मरण रखना चाहिये वातादि दोष शरीर में दो रूप से अवस्थित हैं। धातुरूप, और मलरूप। धातुरूप तीनों दोष, सूक्ष्म और इन्द्रियों के अगोचर हैं केवल क्रियाओं को देख कर इनका अनुमान हो सकता है। इनकी स्वाभाविक और विकृत क्रियाओं के लक्षण ऐसे स्पष्ट हैं कि जिन्हें देखकर सूक्ष्म दर्शी मनुष्य को धातुरूप दोषों की सत्ता अवश्य माननी पड़ेगी। और मलरूप वातादि स्थूल एवं इन्द्रिय गोचर हैं जिनकी सत्ता सभी स्थूलदर्शियों को भी स्पष्ट प्रतीत होती है।

संक्षेप से कहा जासका है कि "वा" गति गन्धनयोः इस धातु से वायु शब्द बना है गति रूपी जितनी क्रियाये हैं यह वायु की हैं गति रूपी क्रिया शरीर में क्या हैं प्रधानतः शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध को मन के पास पहुंचाना और पेशियों में वेग उत्पन्न करके चेष्टाओं का करना ही गतिरूप क्रिया है जो कि पाश्चात्य मत में "सेन्सेशन" Sensation "मस्क्युलर एक्शन Muscular Action कहे जाते हैं। फिर मन में जो कुछ संकल्प विकल्पादि वृत्तियां होती हैं वे भी मनकी गतिरूप क्रिया है अतः वे भी वायु के कार्य्य हैं। पाश्चात्य मत में इसे 'इन्टलेक्शन' Intellection कहा गया है। महर्षि चरक कहते हैं।

वायुस्तन्त्र यन्त्रधरः प्राणोदान समानव्यानापान् प्रवर्तक श्चेष्टाना मुच्चावचानां, नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वेन्द्रियाणामु द्योतक सर्वेन्द्रियाणामभिवोढा। च. सू. अ. १२

अर्थात् वायु शरीर के सब आशय, और यन्त्रों को धारण करता है, इन की क्रियाओं को चलाता है, इस वायु के प्राण, उदान आदि पांच स्वरूप है, हृदय, कण्ठ, उदर, त्वक् और गुह्य आदि स्थानों में इन के कार्य्य पृथक २ स्पष्ट रूप से देखे जाते है। वायु ही बड़ी और छोटी सब क्रियाओं का प्रवर्तक है, एव मनकी वृत्तियों का निर्माणकर्ता तथा चालक है, वायु सब इन्द्रियों में चैतन्य देने वाला है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन क्रियाओं का वहन करता है इत्यादि। चरक के इस वचन को देख किस को न प्रतीत होगा कि पाश्चात्य पण्डित लोग जिसे "नर्वफोर्स" "Nerve force" कहते है। हमारे आचार्य्य, इस उभय वस्तु को "वायु" कहते हैं। यह बल और नाड़ी मण्डल अंग्रेजी शास्त्र का प्रसिद्ध नर्वस सिस्टम् ही है Nervous System ही है। बिजली का पंखा और बिजली की गाड़ी आदि अनेक लोगों ने नहीं देखी थी जब तक कहने से विश्वास नहीं हो सकता था कि बिजली के द्वारा ऐसे २ अपूर्व कार्य्य हो सकते है। अब प्रत्यक्ष कार्य्य को देखकर मुटिया मजूर लोग भी बिजली की अपूर्व शक्ति को मान रहे है। ऐसे ही आचार्यों का कहा हुआ वायु का प्रमाण भी प्रत्यक्ष है। शवच्छेद कर के मस्तिष्क सुषुम्नादि को देखने से और जीवित प्राणी पर नाना विधि परीक्षा करने से प्रत्यक्ष देखने में आता है कि बिजली के समान कोई एक अपूर्व सर्वव्यापिनी शक्ति शरीर

में है जिस के प्रभाव से शरीर के सब काम चल रहे हैं। परन्तु अंग्रेज़ी मत से महर्षियों के मत का प्रभेद इतना ही है कि अंग्रेज़ी मतवालों ने नर्वफार्स Nerve force को स्वीकार कर के उस का अज्ञेय कहकर छोड़ दिया है, और हमारे महर्षि लोगों ने अतीन्द्रिय ज्ञान से इस का स्वरूप बयान कर दिया है।

रूक्ष शीतोलघुः सूक्ष्मश्चलोथ विशद खर
विपरीत गुणैर्द्रव्यैर्मारुत सम्प्रशाम्यति ॥

अर्थात् "वायु" रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद, और खर गुणों वाला है, इन के विपरीत गुण सम्पन्न द्रव्यों से वायु की शान्ति होती है। मूर्ख लोग समझते हैं कि वायु के गुण वर्णन स्व कपोल कल्पना है, किन्तु वे तनक विचार कर नहीं देखते हैं कि विपरीत गुण द्रव्यों से जो वायु की शान्ति हो रही है, केवल इस बात से ही महर्षियों के दिव्य ज्ञान की सत्यता प्रमाणित हो रही है।

प्रकृतिस्थ वायु के विषय पर स्पष्ट कह के विकृत वायु के विषय में चरक पुनः लिखते हैं॥

"कुपितस्तुखलु शरीरं नानाविधैर्विकारैरुपत पति, बलवर्णो सुखायुषामुपघातम्य भवति, मनो व्यावर्त्तयति, सर्वेन्द्रियाण्युपहति" इत्यादि

अर्थात् कुपित वायु शरीर में आध्मान, स्तम्भ, रौक्ष्य आदि नाना विध विकारों को उत्पन्न करता है, मनुष्य का बल, वर्ण सुख और आयु को नष्ट करता है। मन को विकृति उपजाता है इन्द्रियों की शक्ति को नष्ट करता है। इत्यादि ॥

इसी कारण अंग्रेजी में जिन रोगों को Nervous Debrility, Neuros thenia, आदि नाम से निर्देश करते हैं। वैद्य लोग उन सब रोगों को वायु ही समझते हैं। और अंग्रेजी में जिस मनुष्य को Nervons eurotic या Hysterical कहते हैं हम लोग उन को वात प्रकृति कहते हैं। जिस वात प्रकृति का स्वरूप आचार्य्य लोग स्पष्ट लिख गये हैं "अधृतिरदृढ, सौहृद कृतघ्न कृश पुरुषो धमनी ततो प्रलापी द्रुतगति रटनो नवस्थितात्मा" इत्यादि (सु० शा० ४ अ०) इन सब बातों को देख कर कौन स्वीकार न करेगा कि ऋषि लोग समग्र नाड़ी मंडल की क्रिया को करामलक समान समझते थे और वायु इन दो अक्षरों में सब का अवरोध कर चुके थे। अत एव सुश्रुत स्पष्ट कहता है कि "प्रस्पन्द नोद्वहन पूरण विवेक धारण लक्षणो वायु पञ्चधा प्रविभक्तः शरीरं धारयति" (सु० सू० अ० १५ अतः स्पष्ट प्रतीत होता है कि वायु का अर्थ हवा नहीं है, शरीर में उद्गार, अधो वायु आदि धातुभूत नहीं हैं यह मल भूत वायु रूप हैं इन के विषय में वायु का प्रसंग नहीं चला है॥—

पित्त— "तप सन्तापे" इस धातु से पित्त शब्द बना है। शरीर में सन्ताप का मूल भूत जो कुछ सूक्ष्म अतीन्द्रिय वस्तु है "पित्त" उसी का नाम है। शरीर में जो कुछ तैजो गुण के कार्य्य होते हैं पित्त ही उन का परिचालक है। तैजो गुण के कार्य्य शरीर में कौन हैं? शरीर के स्वाभाविक सन्ताप रक्षा (जिस से शरीर का सन्ताप ९८ से ९९ डिगरी तक बना रहता है) और त्वक् की शोषण शक्ति, अन्न का विपाक, मन की तेजस्विता, दृष्टि की उज्वलता और रक्त का उज्वल लालवर्ण, ये ही तेजो गुण के प्रधान कार्य्य शरीर में हैं। इन कार्य्यों के मूल भूत तत्वों को आचार्य्य लोगों ने अतीन्द्रिय ज्ञान से प्रत्यक्ष कर लिया था।

अब अंग्रेज लोग इस को कोई एक अज्ञेय (Heat producing mechanism) सन्ताप देने वाला अतीन्द्रिय वस्तु कह कर पुकारते हैं। पाश्चात्य विद्वान कहते हैं कि निरन्तर शरीर में जो धातु क्षय हो रहा है। इसी धातु क्षय व धातु दाह से (Combustion) अग्नि गुण उत्पन्न हो कर शरीर का सन्ताप रक्षित होता है। चरक भी कहते हैं "अग्निरेवहि पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति स यदा नेन्धनं युक्तं लभते तदा देहजं रसं हिनस्ति" इस वचन का अभिप्राय यह है कि अग्नि के प्रभाव से शरीर के सब धातुओं का निरन्तर क्षय होता जाता है। उस क्षय की पूर्ति के लिये आहार रूप इन्धन पहुंचना चाहिये। अंग्रेजी मत के साथ ऋषियों के मत का इतना सादृश्य रहने पर भी स्मरण रखना चाहिये कि अग्नि केवल आहार रूप इन्धन से ही शरीर में अग्नि गुण सम्पन्न सर्व व्यापी पित्त की सत्ता का सूक्ष्मदर्शी महर्षि लोग स्वीकार करते हैं और कहते हैं "वात पित्त श्लेष्माण एव देह सम्भव हेतवः परन्तु अंग्रेजी मत वाले अभी तक इतनी सूक्ष्मता को नहीं पहुंचे हैं। इस धातु भूत पित्त का गुण क्या है? जिस पर आचार्य लोग अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष करके कहते हैं॥

सस्नेह मुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु।
विपरीत गुणैः पित्तं द्रव्यैराशु विशाम्यति॥

अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहने का अभिप्राय यह है कि यकृत से निस्सृत पीत वर्ण तरल पदार्थ पित्त के विषय में यह लेख नहीं है। क्योंकि उस में यह सब गुण वर्तमान नहीं दीख पड़ते ऋषियों के अतीन्द्रिय ज्ञान की सत्यता का अनुमान अब भी इस प्रमाण से हो सकता है। उपरि लिखित गुणों के विपरीत गुण सम्पन्न

द्रव्यों के उपयोग से निपात ही पित्त की शान्ति है। कुपित पित्त के लक्षण आयुर्वेद में जिस प्रकार कहे गये हैं यथा विस्फोटक, अम्लोद्गार, ऊष्मा आदि अब भी पित्त की शान्ति से शान्त होते हैं। अंग्रेज़ी में जिसे बाइल कहते हैं वह मल रूप या किट्ट रूप पित्त है। धातु रूप पित्त के साथ इस का अर्थ मिलाना बहुत भूल है इस मल भूत पित्त का लक्षण आयुर्वेद में इस प्रकार है॥

पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति नील पीतं तथैव च।
उष्णं कटुरसञ्चैव विदग्धं चाम्ल मेवच॥
(सु॰ सू॰ अ॰ २१)

श्लेष्म " श्लिष आलिंगन " इस धातु से श्लेष्मा शब्द बना है श्लेष्मा सोमगुणात्मक वस्तु है, पित्त के समान धातुभूत श्लेष्मा भी अतीन्द्रिय पदार्थ है। शरीर में संधण (तरावट रखना) श्लेषण (संयोजित रखना) पोषण आदि सोमधातु के सब कार्य्य श्लेष्मा का ही है। पित्त यदि अग्नि रूप है तो श्लेष्मा जल रूप है। केवल अग्नि से दाह मात्र होता है। जल से उस अग्नि की तीक्ष्णता दूर होती है। सब स्थानों पर तरावट पहुंचती है अतएव सुश्रुताचार्य्य कहते हैं।

सन्धि संश्लेषण स्नेहन रोपण पूरण बृंहण तर्पण वलस्थैर्यकृत श्लेष्मा पंचधा पुनि भक्त उदक कर्मणानुग्रहं करोति॥

अर्थात्-सन्धियों का संश्लेषण (तैल के सदृश पदार्थ से चिकना रखना) स्नेहन (कण्ठ जिह्वादि स्थानों को तर रखना)

अन्न का क्लेदन, धातुओं का पूरण और पोषणादि जल के कार्य्य से कफ शरीर को तर रखता है। यदि शरीर में इस श्लेष्मा की तरावट न रहे तो शरीर थोड़े ही दिनों में दग्ध हो जावे। अतीन्द्रिय श्लेष्मा यद्यपि एक ही है, तथापि कार्य्य के अनुसार पित्त के सदृश इस के भी पांच विभिन्न रूप हैं जिन के नाम श्लेषक (Synovia) क्लेदक (Saliva) आदि, रक्खे गये हैं धातु रूप श्लेष्मा के अतीन्द्रिय रूप का प्रत्यक्ष कर के आचार्य्य कहते हैं कि :-

गुरुशीत मृदुः स्निग्ध मधुर स्थिर पिच्छिलाः।
श्लेष्मणः प्रशमं यान्ति विपरीत गुणैर्गुणाः ॥

महर्षियों के इस उपदेश की सत्यता चिकित्सा के समय सभी को प्रत्यक्ष प्रतीत होती है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि नासिका और मुख से जो श्लेष्मा गिरती है वह किट्ट या मल रूप है और उसके विषय में श्लेष्मा का शरीर धारकत्व नहीं कहा गया है, सुतरां धातुभूत कफ पित्त वायु के ही विषय में कहा गया है :—

विसर्गादान विक्षेपैः सोम सूर्या निला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफ पित्तानिलस्तथा ॥

अर्थात् विसर्ग, आदान और विक्षेप से (तर्पण, शोषण, संधारण) चन्द्र, सूर्य्य और वायु जिस प्रकार जगत को धारण

करते हैं उसी प्रकार कफ पित्त और वायु भी शरीर को धारण करते हैं मल, मूत्र वायु, पित्त, कफ के विषय में स्पष्ट ही निर्देश है कि :-

पक्वाशयन्तु प्राप्तस्य शोष्यमानस्य वह्निना।
परि पिण्डित पक्वस्य वायुःस्यात्कटुभावतः॥
किट्टमन्यस्य विण्मूत्र रसस्य च कफोऽसृजः।
पित्तं मांसस्य च मलो मलः स्वेदस्तु मेदसः॥

(चरक)

वायु पित्त, कफ के विषय में ग्रेथ का वक्तव्य कहते हैं कि वायु पित्त कफ केवल शरीर के ही तीन स्तम्भ रूप हैं यही नहीं किन्तु समग्र आयुर्वेद में हेतु लक्षण, औषध के तीन स्कन्ध स्वरूप हैं। मनुष्य का वयः क्रम अहोरात्र, षड् ऋतु, अन्न विपाक आदि सभी में वात पित्त कफ का प्रभाव महर्षियों ने स्पष्ट प्रतिपन्न किया है। जिस से कार्य्य में पूरी २ सहायता मिलती है"।

क्षयरोग की चिकित्सा

❋ स्वास्थभवनों की आवश्यकता ❋

१

क्षयरोग जैसा कठिन है वैसे ही इस की चिकित्सा भी कठिन है। क्षयरोग की चिकित्सा ऐसी नहीं है, जिसे साधारण वैद्य कर सकें। क्षयरोग की चिकित्सा करने में ही वैद्यों की कार्य्य कुशलता और मस्तिष्कशक्ति देखी जाती है। क्षयरोग की आदि अवस्था में अच्छे वैद्य द्वारा चिकित्सा हो और उपचारक आदि शेष चिकित्सा के तीन पाद भी उत्तम हों तो रोगी कदाचित् बच सकता है। रोगी के दुर्बल होने पर रोग से मुक्त पाना कठिन नहीं किंतु असम्भव है, लोक में यह बात प्रसिद्ध है, कि तपेदिक और राजयक्ष्मा से रोगी बच जावे तो यह समझो कि रोगी को यह रोग ही न थे। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में लिखा है:-

परिदिनंसहस्रंतु यदि जीवति मानवः।
सुभिषग्भिरुपक्रान्तः तरुणः शोषपीडितः॥

अर्थात्—यदि शोष वाला रोगी सहस्र दिन तक जीता रहे तो यह जानो कि रोगी तरुण है और उसकी चिकित्सा अच्छे वैद्य द्वारा की गई है।

इस से भावार्थ यह निकलता है कि बलवान रोगी क्षय रोग की आदि अवस्था में अच्छी चिकित्सा होने पर सुधर सकता

है। भारत वासी शारीरिक ज्ञानहीन और प्राय दरिद्री होते हैं। उन को बहुत दिनों तक यह मालूम ही नहीं पड़ता कि हम को क्षयरोग है और साधन हीन हानि से क्षय की आदि अवस्था मे ठीक चिकित्सा भी नहीं कराते।

इस ही से अधिकांश भारत वासी क्षय रोग से मृत्यु पाते हैं। क्षयरोग में बहुत सी औषधिया खाने से ही लाभ नहीं होता जब तक रोगी को उत्तम वायु साफ पानी, बलिष्ट आहार और मानसिक सुख न हों तब तक हजार अच्छी २ औषधियां खाने पर भी क्षयरोगी नहीं बच सकता।

वर्तमान समय में साधारण अवस्था वाले मनुष्यों को उपरोक्त बातें बहुधा नहीं मिलतीं। उन के रहन सहने के मकान अपवित्र होते हैं तथा उत्तम आहार विहार के लिये धन न होने से वे अपनी चिकित्सा का प्रबन्ध ठीक २ नहीं कर सकते। इस ही से बहुधा क्षयरोग से अधिक अकाल मृत्युए होती हैं। अमेरिका, जर्मनी, इगलैंड आदि देशों में क्षयरोगियों के लिये राजा और प्रजा की तरफ से अच्छे २ चिकित्सालय स्थापित हैं। जिन में क्षयरोगियों के लिये उत्तम वायु, साफ पानी और भोजन मिलता है चिकित्सा भी बड़ी सावधानी से की जाती है इस से बहुत से क्षयरोगी बच जाते हैं। भारतवर्ष में भी स्वर्ग वासी भारत सम्राट श्रीमान् सप्तम एडवर्ड महाराज के स्मारक में धर्मपुर (शिमला) में क्षयरोगियों के लिये ऐसा ही शफाखाना स्थापित हुआ किन्तु इतने बड़े देश में एक शफाखाने से काम नहीं चल सकता प्रायः सम्पति शाली धनी लोग ही चिकित्सा के लिये जाते हैं साधारण मनुष्य वहां पहुंच भी नहीं सकते ऐसे शफाखानों की देश में बड़ी आवश्यकता है भारत वर्ष के राजा महाराजा और दानी लोग यदि ऐसे कार्यों में अपने धन का उपयोग किया करें तो भारत वासियों को बड़ा लाभ पहुचे।

यदि भारत वर्ष में क्षयरोग से नौ जवानों और निर्धनों की रक्षा करनी है तो प्रत्येक प्रान्त में अथवा पहाड़ी स्थानों या समुद्र के समीप ऐसे आरोग्य भवन स्थापित होने चाहिये। जिन में निर्धनों के लिये उत्तम स्थान अच्छा खाना पीना और औषधियां बिना मूल्य मिल सकें। क्योंकि जिन मनुष्यों को भर पेट भोजन को नहीं मिलता, सोने के लिये घास फांस की झोंपड़ी नहीं मिलती, रात दिन पेट भरने की चिन्ता ही सताती रहती है, वे अपने जीवन को इस दुष्ट रोग से कैसे बचा सकें।

हे देश के दानियों! यदि आप अपने धन से उत्तम पुण्य सञ्चय करना चाहते हैं तो ऐसे सार्वदेशिक उपयोगी कार्यों में अपना हाथ लगाइये। भारत वर्ष में दान अब भी बहुत होता है किन्तु वह आंख मींच कर केवल नाम के लिये होता है पात्र कुपात्र और आवश्यकता की ओर दानियों का बहुत कम ध्यान जाता है। जहां दश धर्मशाला बनी हैं वहां ही ग्यारहवीं बनती है। भारतवर्ष के दानियों की ओर से कितने आरोग्य भवन स्थापित हुये हैं? देशवासियों को अपनी आवश्यकताओं का ध्यान रख कर दान करना चाहिये। दीन और निर्धन क्षयरोगियों की रक्षा तब ही हो सकती है जब कि उन के लिये क्षयरोग मिटाने वाले आरोग्य भवन स्थापित हों क्यों कि बिना धन के साधन रहित होने से ऐसे लोगों की क्षय की पहली अवस्था में भी चिकित्सा नहीं हो सकती इस से उन बिचारों की प्रायः अकाल मृत्यु ही होती है।

विदेश में स्थापित हुये क्षयरोग के आरोग्यालयों का लेखा देखने से जाना जाता है कि प्रतिशत पचीस रोगी बिलकुल निरोगी और पचास प्रतिशत बहुत अच्छे होकर निकलते हैं।

जो रोगी ऐसे स्वास्थ्य भवनों में रोग की प्रथमावस्था में ही चले जाते है उन में प्रतिशत ७०।७५ रोग मुक्त हो जाते है।

बहुत से लोग यह सन्देह करते हैं कि आरोग्य भवन से निकलने के पश्चात थोड़े दिन पीछे रोग मुक्त पुरुष फिर रोगी हो जाता है, किन्तु विदेशी आरोग्य भवनों का निम्न लिखित लेखा इस सन्देह को भी टिकने नहीं देता।

(१) फॉकनस्टीम आरोग्यालय से—९९ रोगी स्वास्थ्य होकर निकले और निकलने के पश्चात ३ वर्ष से लगाकर ६ वर्ष के बीच जांच करने पर ७२ मनुष्य निरोग पाये, शेष १५ दुबारा रोगाक्रान्त हुये। परन्तु इन में से भी १२ फिर बच गये और १५ रोगी मर गये।

(२) ब्रेहार के स्वास्थ्य भवन में ६५ रोगी रोगरहित होकर निकले उन मे से पांच २१ वर्ष से २६ वर्ष पर्य्यन्त बाराम, १२ से २१ वर्ष पर्य्यन्त ३८, सात से बारह वर्ष पर्य्यन्त निरोगी और जीवित रहे।

इन लेखों के विचार करने से यह बात स्पष्ट है कि इस दुःसाध्य रोग से अधिकांश रोगी आरोग्य भवनों में रह कर चिकित्सा कराने पर बच सकते हैं, क्षयरोग से मनुष्यों को बचाने के लिये अमेरिका में २०० से अधिक ऐसी समितियां स्थापित हैं, ऐसी समितियां व्याख्यान देकर नक्शे दिखाकर क्षय सम्बन्धी छोटी २ पुस्तकें बांटकर, मिट्टी के फेफड़े बना कर और अन्य उपायों से सर्व साधारण मनुष्यों को समझाते हैं कि—

यह रोग (क्षय) बड़ा कठिन है, इस से हम किस तरह बच सकते हैं, क्षयरोगियों को किस प्रकार रहना चाहिये आदि, ऐसी

समितियाँ क्षयरोगियों को आरोग्य भवनों में पहुंचाती हैं और दीन क्षयरोगियों को सब प्रकार का खर्च देकर उन्हें आरोग्य भवनों में भेजती हैं।

जर्मनी, स्विट्ज़रलेन्ड, फ्रान्स और इंगलिस्तान में भी क्षय रोगियों के लिये स्वतन्त्र आरोग्यभवन स्थापित हैं और इन से प्रति वर्ष सहस्र २ रोगी स्वास्थ्य रूपी सुधा को प्राप्त करते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि जो भारतवर्ष जनसंख्या तथा भूमि-माप में सब देशों से बड़ा है जिस में सर्वोत्तम जल वायु और स्थान प्राप्त होते हैं। जहां पर दीन धन हीन क्षयरोगियों की दुःख भरी आह चारों ओर से सुनाई पड़ती है वहां ऐसे आरोग्यभवन क्यों स्थापित नहीं होते ? जब तक देशवासियों का ध्यान इस ओर न जायगा भारतवर्ष में क्षयरोग का डंका इस ही प्रकार पिटता रहेगा और हमारी चौंपड़ कुछ भी न चलेगी।

आरोग्यभवन कैसे होने चाहियें

२

आरोग्य भवन ऊंचे स्थान पर, बनाये जावें, जो समुद्र की सितह से कम से कम ३॥ हजार और अधिक से अधिक ७ हजार फीट ऊंचा हो।

(१) आरोग्य भवन का कुल काम एक योग्य अनुभवी और दयालु वैद्य की आधीनता में हो।

(२) मकान साफ़ सुथरे और हवादार हों।

(३) स्त्री और पुरुषों के लिये अलग २ स्थान हों।

(४) प्रत्येक रोगी अलग २ कमरे में रक्खा जावे।

(५) सपरोगी के कमरे में दूसरा मनुष्य [illegible] सोवे और न किसी प्रकार की रोशनी ही की जावे। शरदऋतु में भी ताज़ी हवा आने के लिये सम्पूर्ण खिड़कियां खुली रक्खीं जावें।

(६) रसोई घर, भोजनालय, मित्रों के लिये स्थान, पाखाना, धोबी खाना आदि सब स्थान आरोग्यालय से दूर बनायें जावें।

(७) मकान को अधिक सजाने की आवश्यकता नहीं है सामान और फर्नीचर जितना थोड़ा होवे उतना ही अच्छा।

(८) वैद्य का बंगला एक ऊंचे स्थान पर हो, जहां से वह रोगियों की स्थिति प्रति समय देख सके।

(९) आरोग्य भवन की सड़कें मुख्य प्रबन्ध से उतार चढ़ाव की बनाई जावें।

क्षयरोग की प्राकृत चिकित्सा



क्षय रोग में औषधियां सेवन करने से इतना लाभ नहीं होता जितना कि प्राकृत चिकित्सा से। आज कल के बड़े २ डाक्टरों का मत है। कि क्षय रोग में औषधियां सेवन करने से कुछ भी लाभ नहीं होता वे कहते हैं कि :—

Naturo, a Mother, kind alike to all, still grants her bliess at Elubours carinest call.

अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों पर एक समान प्रेम रखने वाली एक अति मायावी दिव्य माता के समान प्रकृति, उद्योग-शील पुरुषों को सदैव अमोघ सुख प्रदान करती है। प्रख्यात डाक्टर ट्रगर इस विषय में कहते हैं कि :—

"हे प्रिय क्षय रोगी ! यदि तुम्हें ऐसी आशा हो कि कोई चमत्कारिक औषधि निकल आवे कि जिस के सेवन करने से शीघ्र क्षयरोग नष्ट हो जावे तो ऐसी आशा दुराशामात्र है। रोग नष्ट करना तुम्हारे ही हाथ में है, धैर्य्य साहस, व्यवहारिक विवेक बुद्धि, और निरन्तर सावधानी इन्हीं के ऊपर रोग मिटाने का आधार है। यह सत्य बात तुम्हारे हृदय में जितनी अधिक दृढ़ हो जावे, उस में ही तुम्हारा हित है"। इस ही प्रकार और भी

बहुत से डाक्टरों का मत क्षयरोग में औषधियाँ न खिलाने के पक्ष में है। वे कॉडलिवरऑयल, एक्स ट्रैक्ट औफगीर, ट्यूबर्किलिन, ट्युबरक्युलोआयन, आदि औषधियों को क्षयरोग में देना वाहियात बतलाते हैं। और न इन का मत क्षयरोग में किसी प्रकार के मांस रस या मांस सिद्ध औषधियां खिलाने का है।

तात्पर्य यह है कि क्षयरोगी जब उसे मालूम हो कि मुझ में क्षय का अंकुर जम गया तब ही से उत्तम वायु, साफ़ पानी, योग्य आहार विहार और मानसिक सुख पाने का सब से पहिले प्रबन्ध करे।

यदि प्राकृतिक उपायों के साथ किसी अच्छे वैद्य की औषधियां सेवन की जावें तो क्षयरोग में अति लाभ पहुंच सकता है। अन्यथा केवल औषधियां ही खिलाते रहना चूल्हे में डालने के समान है। डाक्टरों का ही यह मत नहीं, किन्तु आयुर्वेदीय ग्रन्थों का भी है।

क्षयरोग ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण रोगों में पथ्य से रहना आरोग्यता प्रदान करता है। आयुर्वेदीय ग्रन्थ स्वयं कहते हैं कि:——————

पथ्येसति गदार्तस्य किमौषधिनिषेवणैः।

अर्थात्—बिना औषधि सेवन किये केवल पथ्य करने से ही रोग नष्ट हो जाता है। वैद्य लोग सन्निपात आदि ज्वरों में बहुत दिनों तक औषधियां न खिलाकर रोगी को प्रकृति के ऊपर ही छोड़ देते हैं। केवल गरम पानी पीकर पथ्य पूर्वक रहने से सैकड़ों रोगी आरोग्य लाभ करते हैं। इसलिये रोगियों को चाहिये कि वे क्षयरोग मिटाने के लिये प्राकृत साधनों की ओर सब से पहले ध्यान रक्खें और उन्हें काम में लावें।

❀ शुद्ध वायु ❀

क्षयरोग फेंफड़ों की बीमारी है और फेंफड़ों की खुराक शुद्ध वायु है। यदि रोगी को ताजी वायु नहीं मिलती तो जानों कि उस का आरोग्य होना दुर्लभ है। ताजी वायु बड़े२ शहरों और घनी आबादी में नहीं मिल सकती। इसलिये छोटे२ गांव, पहाड़, या समुद्र के किनारे पर रहना आवश्यकीय है। इन स्थानों पर चले जाने से ही ताज़ी वायु नहीं मिल सकती किन्तु वहां ऐसे मकानों में रहना चाहिये कि ताजी वायु का पूरा २ लाभ रोगी को मिल सके। जिस मकान में क्षय रोगी रहे उस में छोटी२ खिड़कियां न हों। क्योंकि वायु के झोंके ऐसे रोगियों को नुकसान पहुचाते हैं। मकान के सब दर्वाजे बड़े२ हों जिस से ताजी वायु आसानी से आ सके और खराब वायु बाहर निकल जाय।

यदि रोगी में बल होवे तो शुद्ध वायु पाने के लिये मकान में घुसा न रह कर बाहर मैदान में टहला करे। क्षय रोगी को ताजी वायु में रहना सहना उठना बैठना चाहिये। वैद्य लोगों में ऐसी बुरी परिपाटी चल गई है कि वे ज्वर वाले तथा क्षय रोगी को ताज़ी वायु, नहीं लगने देते। ताजी वायु रोगी के लिये शत्रु समझी जाती है, बहुत से वैद्य अंधेरी कोठरियों में (जिन्हें हम कारागार समझते हैं) रोगियों को डालकर मार डालते हैं, यह उन लोगों की भूल है॥

क्षय रोगवाले के लिये मन्द वायु और सर्दी का मौसम तथा समुद्री वायु बड़ी लाभ दायक है। शीत ऋतु में बिना चिकित्सा किये भी रोगी की तौल बढ़ती जाती है। डा० फ्रट आर श्लेषम लिखते हैं कि—

साफ़ पानी

जिस प्रकार अन्य रोगों में साफ़ पानी पीने की आवश्यकता है वैसे ही क्षयरोग में भी साफ़ पानी पीना चाहिये। साफ़ पानी का मनुष्य के स्वास्थ्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। क्षयरोग की भिन्न २ अवस्थाओं में विशेष रीति से जल पिलावें।

(१) यदि क्षयरोगी को ज्वर आता हो तो पानी को गरम करके छानकर पिलावे। बहुत से डाक्टर गरम पानी पिलाने से सहमत नहीं हैं वे कहते हैं कि पानी को गरम करने से पानी की जीवनीय शक्ति नष्ट हो जाती है परन्तु यह उन का भ्रम है। गरम पानी ज्वर नाशक प्रयोगों में प्रधान है। पानी को गरम करने से उस में मिले पार्थिव परमाणु दूर होजाते हैं। क्षयरोग के लिये पानी इतना औटाया जावे जिस से उस में दो तीन उफान आजावें। पीछे साफ़ करके किसी मिट्टी के बरतन में भरकर शीतल करके रोगी को पिलावे :—

(२) यदि रोगी को दाह अधिक हो और ज्वर न हो तो अच्छे कुए का पानी (जिस कुए में कूड़ा करकट या वृक्ष के पत्ते न पड़ते हों, पानी ज्यादा खिंचता हो, बरसात का पानी न आता हो) बिना औटा हुआ केवल साफ़ करके ही पिलावे-टिकटियों पर घड़े रखकर और उन से पानी टपकाकर अथवा पानी को साफ़ करने वाली बोतलों से पानी साफ़ करके (ये बोतलें विलायत से मसाले की बनी आती हैं पानी में डालने से बोतल के भीतर चूचूकर साफ़ पानी भर जाता है) या भभके से खींच कर फिर ठण्डा कर के पीवे—

(३) यदि रोगी को खांसी ज्यादा उठती हो और कफ़ नहीं निकलता हो। भूख कम हो तो अडूसे के पंचांग को जला कर उसके कोयलों से पानी साफ़ करके (टिकटियों द्वारा) रोगी को पिलावे यह पानी निश्चित गुणकारी होता है पांच सात रोज़ पीने से कफ़ आसानी से निकलने लगता है गला साफ़ होता है, जिस रोगी का मूत्र के साथ वीर्य्य जाता हो वह इस जल को न पीवे।

(४) बुखार रोज रहनेवाले क्षय रोगी को द्राक्षा (मुनक्कों) का जल बड़ा लाभ देता है बीस सेर पानी में एक सेर मुनक्के या अंगूर डाल कर दो दिन भिगोवे पीछे भभके से अर्क खींचे इस पानी को कूप के साफ़ पानी में मिलाकर रोगी को पिलावे।

(५) जिस रोगी को दस्त पतले होते हों उसे धाय के फूलों का अर्क साफ पानी में मिला कर पिलाने से बहुत लाभ होता है।

आहार

आहार ही मनुष्य का जीवन है। क्षय वालों को उत्तम आहार की योजना करना भी कठिन काम है। क्यों कि प्रायः सब वाले दुर्बल, और चीवड़ स्वभाव वाले हो जाते हैं और खाने में उन की स्वाभाविक अरुचि रहती है बार २ खाने से घबड़ाते हैं। इसलिये क्षयरोगियों को ऐसा आहार खिलावे जिससे वह रुचि से खा सकें हम यह नहीं कहते कि क्षयरोगियों को बिना लाभ हानि देखे स्वादिष्ट भोजन भर पेट खिला दिया जावे जिसे वे न पचा सकें और उलटे लेने के देने पड़ जांय तात्पर्य यह है कि चिकित्सक को चाहिये कि हितवस्तुओं का सुस्वादु आहार बनवाकर थोड़ी मात्रा से रोगी को खिलावें सब से पहले वैद्य को रोगी की भूक और रुचि की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये रुचि बढ़ाने के लिये सब से उत्तम उपाय ताजी स्वच्छवायु का सेवन करना है यदि रोगी में बल हो तो थोड़ी सी कसरत यानी प्रातः सायं वायु सेवन करे ऐसा करने से भूक बढ़ने लगती है।

भूक लगने के लिये कोई साधारण औषधि सेवन करते रहना भी अच्छा है, बहुत से हकीम क्षयरोगी को भूक बढ़ाने के लिये लहसन का खाना लाभ दायक बताते हैं किन्तु जिन की कफ प्रकृति हो और तीक्ष्ण वस्तुओं का सेवन कर सकते हों वेही इसे थोड़ी मात्रा में सेवन करें। डाक्टर लोग दुर्बल रोगियों को भूख बढ़ाने के लिये शराब देना अच्छा समझते हैं, परन्तु

हम देशी सुरा जिस में केवल नशा ही हो क्षयरोगियों को देना पसन्द नहीं करते। हां क्षयरोग में लिखे, द्राक्षासव आदि अरिष्ट, आसव रोगी के लिये मद्य के स्थान में दिये जावें तो कोई हानि नहीं है।

चिकित्सक के लिये यह आवश्यकीय बात है कि रोगी को कमज़ोर न होने दे। जो वैद्य क्षयरोगी का शनैः २ बल घटाता है वह उसे मारोन्मुखता की तरफ़ लेजाता है। रोगी का बल बिना आहार के नहीं बढ़ सकता। थोड़ा २ बार २ आहार खिलाना क्षयरोगी को बड़ा लाभ पहुंचाता है। बहुत से लोग यह आक्षेप करते हैं कि आयुर्वेदीय चिकित्सक केवल लंघन या मूंग की दाल अथवा सूखी रोटी ही आहार देने में पड़े हैं। परन्तु यह बात शास्त्रीय प्रक्रिया को छोड़ उटपटांग इलाज करने वालों की है। शास्त्रों में, क्षय रोगियों को अनेक प्रकार के घृत, दुग्ध, मांस रस, यूष, शाक, फल आदि देने लिखे हैं और विद्वान वैद्य इन्हें देते भी हैं। ऐसे आहार से रोगी का बल क्षीण नहीं होने पाता प्रत्युत धीरे २ रोगी, स्वास्थ्य लाभ करता है। हम इन आहारों की प्रक्रिया यहां बतलाते हैं॥

शास्त्रों में बकरी का दुग्ध, घृत, मांसरस देना बड़ा लाभ दायक लिखा है। गाय का दुग्ध भी लाभप्रद है परन्तु बकरी का सर्वोत्तम। यदि बकरी या गाय को गिलोय, अडूसा, खिला कर दुग्ध लिया जावे तो और भी विशेष लाभ देता है। रोगी को जिस विकार की अधिकता हो उसको नाशक वनस्पति खिला कर दुग्ध लेना चाहिये यदि बल बढ़ाना हो तो गोखुरादि या अश्वगन्धादि चूर्ण, जौ के चून के साथ मिला रोटी बनाकर गौ या बकरी को खिलाकर दुग्ध लेना चाहिये। यदि रोगी को दाह अधिक हो और धातु सूखती जाती हों तो कच्चे दुग्ध के फेन या धारोष्ण दुग्ध पिलाना

बड़ा लाभ दायक है। दुग्ध का क्षीर पाक [बराबर या द्विगुण जल मिला मन्द अग्नि से पकाकर दुग्ध मात्र शेष रखने] बना कर पिलाना भी बहुत गुणदायक है, क्षीर पाक बनाते समय औषधियां भी डाली जाती हैं। क्षीरपाक प्रायः रात्रि में पिलाते हैं। दिन में भी आहार पिलाया जावे तो और अच्छा॥

ज्वरघ्न क्षीरपाक— यदि क्षय वाले को ज्वर की अधिकता हो तो क्षीर पाक बनाते समय गिलोय, पीपल, मुनक्का, डालकर दुग्ध औटावे। वर्द्धमान पीपल से धातुओं में प्रविष्ट हुआ ज्वर निकल जाता है। एकर पीपल नित्य बढ़ा कर २१ पीपल तक बढ़ावे और फिर एकर घटाता जावे। पहले समय में पांच २ पीपल बढ़ाकर सौ सौ पीपल तक नित्य दुग्ध में डाल कर और औटाकर पिलाते थे। अब भी हम ने बहुत से रोगियों को पचासर पीपल तक पिलाया है। पीपलों का प्रयोग ज्वर नाश करने में अद्वितीय है। रोगी की प्रकृति और बल देख कर पीपलों का प्रयोग करे॥

कासघ्न क्षीर पाक— खांसी की अधिकता में दुग्ध के साथ, मुनक्का, गिलोय कटेरकारी, आदि औषधियां डालकर औटावे। अडूसेकी जड़ का वक्कल भी डालना अच्छा है। मुलेहटी का चूर्ण जब खांसी सूखीहो तब डाले। यदि खांसी के साथ, पार्श्व शूल हो तो दशमूल या, पञ्च मूल डाले। यदि खांसी के साथ खून आता हो तो पीपल की छाल दुग्ध में डाल॥

बलिष्ठ क्षीर पाक— बल बढ़ाने के लिये क्षीरपाक में, बंशलोचन, इलायची, मुनक्का, डाले, पायद्रा[illegible] चूर्ण को क्षीरपाक के साथ खावे—

मद्य — डाक्टर लोग दुर्बल रोगियों की छुधा बढ़ाने के लिये भोजन के साथ थोड़ी २ सुरा पिलाना अच्छा समझते हैं परन्तु अच्छे २ वैद्य और हकीम इसे हानिकारक बतलाकर पीने की आज्ञा नहीं देते। हां आयुर्वेदीय ग्रन्थों में औषधरूप द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, उशीरासव, दशमूलासव आदि क्षयरोगियों को सेवन करने के लिये वर्णन किये हैं और इन को आहार न समझ कर औषधिरूप सेवन करना चाहिये। ये आसव शराब की तरह दुर्गुण नहीं करते किन्तु रोगी को बड़ा लाभ पहुंचाते हैं।

मांस — डाक्टर लोग मछली के तेल को इस में परम लाभ दायक समझते हैं। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में भी इस रोग पर बकरे का मांस आहार और औषधि दोनों में हित माना गया है। क्षय रोगियों को जोकि मांसाहारी हैं इस से लाभ भी पहुंचता देखा है। हम मांस खाने के पक्षपाती नहीं हैं, दूध, घृत, मक्खन आदि पदार्थ भी मांस से कम लाभ दायक नहीं हैं। परन्तु आयुर्वेदीय शास्त्र सार्व भौमिक चिकित्सा शास्त्र है। संसार में सब प्रकार के मनुष्य हैं इस ही लिये आयुर्वेदीय ग्रन्थों ने सब लोगों की प्रकृति को विचार कर आहार की योजना की है।

जो मांसाहारी पुरुष हैं जिन्हें मांस खाने में ग्लानि नहीं है वे अपनी इच्छानुसार बकरे के मांस का रस, सत्तू, आदि खा सकते हैं। परन्तु फलाहारी पुरुषों को इस से लाभ के स्थान में हानि होगी। उन्हें ग्लानि होकर अन्य उत्तम भोजनों से भी अरुचि होजायगी। जहां तक हो सके मनुष्यों को दुग्धादि सेवन कर अपने जीवन की रक्षा करनी चाहिये।

बड़ा लाभ दायक है। दुग्ध का क्षीर पाक [बराबर या द्विगुण जल मिला मन्द अग्नि से पकाकर दुग्ध मात्र शेष रक्खे] बना कर पिलाना भी बहुत गुणदायक है, क्षीर पाक बनाते समय औषधियां भी डाली जाती हैं। क्षीरपाक प्रायः रात्रि में पिलाते हैं। दिन में भी थाड़ा२ पिलाया जावे तो और अच्छा॥

ज्वरघ्न क्षीरपाक यदि क्षय वाले को ज्वर की अधिकता हो तो क्षीर पाक बनाते समय गिलोय, पीपल, मुनक्का, डालकर दुग्ध औटावे। दुग्धमान पीपल से धातुओं में प्रविष्ट हुआ ज्वर निकल जाता है। एक२ पीपल नित्य बढ़ा कर २१ पीपल तक बढ़ावे और फिर एक२ घटाता जावे। पहले समय में पांच २ पीपल बढ़ाकर सौ सौ पीपल तक नित्य दुग्ध मे डाल कर और औटाकर पिलाते थे। अब भी हम ने बहुत से रोगियों को पचासर पीपल तक पिलाया है। पीपलों का प्रयोग ज्वर नाश करने में अद्वितीय है। रोगी की प्रकृति और बल देख कर पीपलों का प्रयोग करे॥

कासघ्न क्षीर पाक खांसी की अधिकता में दुग्ध के साथ, मुनक्का, गिलोय कण्टकारी, आदि औषधियां डालकर औटावे। अडूसेकी जड़ का वक्कुल भी डालना अच्छा है। मुलेहठी का चूर्ण जब खांसी सूखी हो तब डाले। यदि खांसी के साथ, पार्श्व शूल हो तो दशमूल या, पञ्च मूल डाले। यदि खांसी के साथ खून आता हो तो पीपल की छाल दुग्ध में डाले॥

बलिष्ठ क्षीर पाक बल बढ़ाने के लिये क्षीरपाक में, गंगाजोवन, इलायची, मुनक्का, डाले, तालमखानेचूर्ण को क्षीरपाक के साथ खावे—

मद्य डाक्टर लोग दुर्बल रोगियों की क्षुधा बढ़ाने के लिये भोजन के साथ थोड़ी २ सुरा पिलाना अच्छा समझते हैं परन्तु अच्छे २ वैद्य और हकीम इसे हानिकारक बतलाकर पीने की आज्ञा नहीं देते। हां आयुर्वेदीय ग्रन्थों में औषधरूप द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, उशीरासव, दशमूलासव आदि सपरोगियों को सेवन करने के लिये वर्णन किये हैं और इन को आहार न समझ कर औषधिरूप सेवन करना चाहिये। ये आसव शराब की तरह दुर्गुण नहीं करते किन्तु रोगी को बड़ा लाभ पहुंचाते हैं।

मांस डाक्टर लोग मछली के तेल को इस में परम लाभ दायक समझते हैं। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में भी इस रोग पर बकरे का मांस आहार और औषधि दोनों में हित माना गया है। क्षय रोगियों को जो कि मांसाहारी हैं इस से लाभ भी पहुंचता देखा है। हम मांस खाने के पक्षपाती नहीं हैं, दूध, घृत, मक्खन आदि पदार्थ भी मांस से कम लाभ दायक नहीं हैं। परन्तु आयुर्वेदीय शास्त्र सार्व भौमिक चिकित्सा शास्त्र है। संसार में सब प्रकार के मनुष्य हैं इस ही लिये आयुर्वेदीय ग्रन्थो ने सब लोगों की प्रकृति को विचार कर आहार की योजना की है।

जो मांसाहारी पुरुष हैं जिन्हें मांस खाने [illegible] ग्लानि नहीं है वे अपनी इच्छानुसार बकरे के मांस का रस, सत्, [illegible] सकते हैं। परन्तु फलाहारी पुरुषों को इस से [illegible] हानि होगी। उन्हें ग्लानि होकर अन्य [illegible] रुचि होजायगी। जहां तक हो सके [illegible] कर अपने जीवन की रक्षा करनी चाहिये।

धारोष्ण दुग्ध जिन रोगियों को दाह अधिक रहता हो धातु निरन्तर सूखती जाती हो, निर्बलता और रूक्षता बढ़ती हो उन्हें धारोष्ण दुग्ध बड़ा लाभ दायक है। यद्यपि कच्चे दुग्ध में डाक्टर लोग कीटाणुओं का होना मानते हैं। परन्तु हमने अनेक रोगियों को इससे बड़ा लाभ होता देखा है। एक रोगी जो बहुत दुखी था और उसे क्षय का अंकुर तीन चार महीने से ही उत्पन्न हुआ था इस धारोष्ण दुग्ध से ही थोड़े दिनों में चंगा हो गया। जिस रीति से इस रोगी को तथा अन्य रोगियों को हमने धारोष्ण दुग्ध पिलाया है उसकी विधि लिखते हैं॥

जिस गाय का दुग्ध लिया जावे उसे निम्न लिखित औषधियों का मोटा २ चूर्ण॥= जौ का चून ॥सेर, घी॥– शक्कर॥– मिला कर रोटी बना कर और अग्नि पर सेक कर खिलावे और थोड़ा २ सेंधा नमक भी गौ को चटाता रहे॥

असगंध, सितावर, मूसली सुफेद, समुद्र सोख, तालमखाना, मुलेहटी, खिरैटी के बीज, समान भाग लेकर कूट कर चूर्ण करे इस रोटी को पांच सात दिन खिलाने के पश्चात्–पहले उस गाय के दुग्ध का घी निकाल कर रक्खे। एक तोला घृत, शहद माशे ६, पीपल दाने घुटे हुये चार रत्ती मिलाकर चाटे और ऊपर से उसी गाय का धारोष्ण दुग्ध पाव भर से लेकर आध सेर तक पीवे–

गौ के दुग्ध को दुहते समय दोहनी से एक सुफेद वस्त्र का छन्ना बांध दे और उस छन्ने पर मिश्री अनुमान की पिसी हुई रखदे पश्चात् दुग्ध को उसके ऊपर दुहे और उसे तत्काल ही झाग तक फेन शान्त न होने पावे पीले।—

मक्खन | क्षय रोगी को मक्खन खाना भी बड़ा उपयोगी है। जिन को रूखया दाह शुष्क कास, या धातु नाश हो उन्हें सितोपलादि चूर्ण माशे दो मक्खन तोले एक या दो शहद माशे ६ मिलाकर खाना चाहिये। बाजारू, या कुछ दिन रक्खा हुआ मक्खन काम नहीं देता– गौ या बकरीके पवित्र दुग्ध का नित्य प्रति ताज़ा मक्खन निकाल कर खाना चाहिये॥

घृत | घृत के नाम से बहुत से रोगी और वैद्य बड़े डरते हैं। वैद्यों में सूखी रोटी खिलाना ही पथ्यापथ्य का निचोड़ समझा जाता है। परन्तु यह प्रणाली शास्त्रीय सिद्धान्त से विपरीत है। पुराने ज्वर और इस क्षय में जिस में ज्वर से धातु निरन्तर सूखती जाती हो घृत देना चरकादि ऋषि बड़ा लाभ दायक बतलाते हैं। जिस प्रकार जलते हुए मकान को मनुष्य जल से बुझा देते हैं वैसे ही ज्वर से सूखते हुए प्राणियो को वैद्य घृत से बुझाता है ऐसा चरकमें लिखा है। क्षयरोग पर पचास चालीस प्रकार के घृत बनाने के प्रयोग शास्त्रो में पाये जाते हैं। (जिन में से कुछ आगे चिकित्सा प्रकरण में लिखेंगे) हमने अनका क्षयरोगियो पर अनेक बार प्रयोग किया है और लाभ भी देखा है। वैद्यो को निर्भय होकर घृत को सिद्ध कर उपयोग करना चाहिये क्षयरोग में धातुओ का क्षय होने से निर्बलता विशेष होती है और दुग्ध घृतादि बल बढ़ाने वाले प्रधान पदार्थ हैं।

फल | इस रोग में फलों का खाना भी बहुत अच्छा है। विलायती अनार, अंगूर, मुनक्का, किशमिश, फालसे, केला, छुहारे, आममीठा, इन फलों को थोडे २ खाना चाहिये, अनार के रस के साथ पकाये हुए अन्न भी दाहनाशक तृप्तिकारक और बल देने वाले होते हैं। भोजन काल से अन्य समय

में भूख लगने पर फलों को खावे। एक हकीम मुनक्कों का अधिक खाना इस रोग में बड़ा हित बतलाते हैं। रुचि के लिये सूखे करवेरों का चूर्ण मिश्री और नमक मिला कर खाते रहना अच्छा है।

अन्न गेहूं, निस्तुष जौ, मूंग, पुराने साठी चांवल, इस रोग में हितकारी माने जाते हैं गोधूमसत्त्व, यवसत्त्व, मूंग, या जौकायूष, गेहूं का दलिया, बना कर खाना चाहिये। इन पदार्थों में यदि खटाई की आवश्यकता हो तो आमले या खट्टे अनार की खटाई डाले। कद्दू, घिया, ढड्ढ, आदि इस में वर्जित हैं। पदार्थों में तीक्ष्ण मसाला नहीं डालना। हींग, लाल मिर्च, लहसन आदि हानि कारक हैं।

(१) गोधूमसत्त्व अथवा यवसत्त्व बनाने की विधि। पहले गेहूं या पुराने जौ को कूट कर और भिगो कर सत्त्व निकाले पीछे उन्हें बकरी के घी में भून ले (भूनने में एक मिनिट भी नहीं लगती, कलछी के तेज एक हुए घी में सत छोड़ते ही भुनजाते हैं) तथा अनार और आमले का जल पहले से निकाल तयार कर रक्खे। फिर एक बर्तन में थोड़ा घी डाल जीरे का छोंक लगा अनार का और आमले का रस तथा यवादि के सत्त को छोड़ दे। उस में सेंधानमक, इलायची, पीपर, और थोड़ी सी सोंठ को कूट कर डाल दे। जब एक उफान आजावे तब इस यूष को उतार क्षय पीडित रोगी को पिलावे। अथवा भुने हुए सत्त को मिश्री के जल में औटा एक उफान देवे, इस में सितोपलादि चटनी और आमले का चूर्ण भी थोड़ा डाल दे, इस यूष में चिकनाई ज्यादा ठीक नहीं, यूष के पानी का प्रमाण अच्छी तरह कर लेना योग्य है।

(२) जौ का यूप–इस यूप में यवों को पका कर यूष निकाला जाता है, परन्तु इसका बनाना अति कठिन है अतएव इस की प्रक्रिया लिखी जाती है। पुराने छिले हुये यवों को सोलह गुने पानी में पकावे तथा दूसरे एक बर्तन में गरम पानी और भी रक्खा रहने देवे, जब चौथाई पानी रह जाये तब उसे फेंक देवे, और इन में इस दूसरे बर्तन का गरम पानी उतना ही डाल देवे और फिर पकावे, इस प्रकार यव दूसरे या तीसरे बार में अवश्य गल जावेंगे तब उस अन्तिम पानी को सीजे हुए जौ सहित उतार लेवे और फिर एक गाढ़े कपड़े में डालें और सुफेद और गाढ़े सत्व को निकाललें। तदनन्तर इस सत्व को घृत, जीरा हिंगवात का छौंक देकर छोंक और इस में सेंधानमक, आमला, पीपर, सोंठ डाल एक उफान आने पर उतार लेवे और रोगी को सेवन करावे। आमले की जगह आमले का रस भी डाला जाता है। इस यूप को मीठा बनाओ तो मीठा भी नं० १ की विधि से बना सकते हो। पानी बार २ फेंकने का अभिप्राय यह है कि जौ बहुत देर में गलते हैं एक बार के पानी में नहीं गलेंगे जौ को भुनाकर यूप बनाना उत्तम नहीं है।

शाक, लौकी, तोरई, बथुआ, कमल की जड़, केला, कटहर, परवल, इन के शाक बना कर रोगी को खिलाने चाहिये। तरबूज़, सरसों, करेला, मैथी, ककड़ी, सेम, के शाक हानिकारक हैं। गरम और तेज़ मसाले शाकों में न डाले जावें।

आहार विधि- इस रोगी को थोड़ा २ खाना बार २ खाना चाहिये। ऊपरी उपचारक, समझा बुझाकर रोगी के पेट में थोड़ा बहुत आहार अवश्य पहुंचाता रहे। जिस चीज़ के खाने से लाभ पहुंचे उसे खाता रहे अन्यथा तत्काल छोड़ दे।

॥ विहार ॥

क्षयरोगी को सदैव पवित्र, चिन्ता रहित, और खुश मिज़ाज रहना चाहिये। क्षयरोगी को यह जतलाना कि तुम्हारा जीवन सकट मय है बड़ा हानि कारक है। शरीर को जितना आराम दिया जासके देवे शीतवायु सुनना, जी बहलाने के लिये इष्टमित्रों से हास्य करना, चन्दन लगाना, मन्द २ वायु का सेवन आदि रोगी का स्वास्थ्य बढ़ाते हैं। जिस काम या परिश्रम से शरीर में थकान मालूम दे उसे कभी न करे। ऐसा खेल जिस में जोश या गरमी बढ़े कदापि न खेले। यदि रोगी बलिष्ठ हो तो शुद्ध वायु के सेवन के लिये किसी बगीचे में टहलकर फूलों को सूंघता रहे। सब रोगी के उपचारक उसे शान्ति देते रहें। यद्यपि क्षयी वाले रोगियों का स्वभाव चोचल और क्रोधालु हो जाता है परन्तु उन्हें धीरज तथा शान्ति देते रहना योग्य है।

स्नान | चार छः दिन पीछे रोगी को गुन गुने या माड़ी पानी से न्हिलाया जावे। मैल मिट्टी एक तौलिया से साफ करले। स्नान प्रातः काल करना चाहिये। इससे जुकाम पैदा नहीं होता।

इष्ट मित्र, | सब रोगी से प्रेम रखने वाले, रोगी को आश्वासन देते रहें। और रोगी को बहुत बुलाने की कोशिश न करें। ऐसा करने से रोगी का दिमाग कमज़ोर हो जाता है।

किसी विचारणीय विषय पर बहस करना भी अच्छा नहीं है। जहां तक हो सके रोगी के पास मनुष्य कम आया करें।

पढ़ना लिखना । क्षय रोगी को ऐसी पुस्तकें जिन में दिमाग़ को ज़ोर लगाना पड़े, और ऐसे उपन्यास जिन से मन में ग्लानि वा कुभाव उत्पन्न हों पढ़ने के लिये न दिये जावें । हां जिन पुस्तकों के पढ़ने से चित्त में शान्ति प्रसन्नता और हर्ष पैदा हो उन्हें वे अवश्य पढ़ सकते हैं, क्षय रोगी को पढ़ने चाहियें । रामायण महाभारतादि पुस्तकें पढ़ने के लिये अच्छी हैं । विचारपूर्ण लेख लिखने से भी उन्हें रोकना चाहिये । अपने इष्ट मित्रों को पत्रादि लिखने का समय दिया जावे ।

व्यायाम । थोड़ी २ ऐसी व्यायाम जिससे शरीर में थकान न मालूम पड़े क्षय रोगियों को करते रहना चाहिये । पर तो अधिक कसरत या परिश्रम भी रोगियों के लिये अच्छा नहीं है । ज्यों ज्यों क्षय रोगी स्वास्थ्य लाभ करता जाय थोड़ा २ व्यायाम भी बढ़ाया जावे । जब बल अधिक आजावे तब कुछ परिश्रम करने वाली कसरत भी हानि नहीं देती किन्तु उस से नींद आजाती है । आहार के पचाने में व्यायाम बड़ी सहायता देती है । और क्षय वालों का आहार पचना एक आवश्यकीय बात है । इस से स्वास्थ्य बढ़ने के साथ इसे भी बढ़ावे ॥

हिमायतियों के ज़ोर से कितनी ही नयी खोज जावें परन्तु अभी वे प्राचीन ऋषियों की चिकित्साप्रणाली से बराबरी करने लायक नहीं हुए। हमारे शास्त्रों में क्षय रोग का कारण कीटाणुओं को भी माना है परन्तु जैसे डाक्टर लोग इस के पीछे पड़े हैं वैसे उन्हों ने इन का वर्णन और परवाह नहीं की क्योंकि उन की चिकित्सा प्रणाली स्थिरता रखती थी। वे जानते थे कि बिना उपयुक्त भूमि मिले कीटाणु उत्पन्न नहीं हो सकते, और उत्पन्न हो भी जावें तो रोग पैदा नहीं कर सकते इसलिये जो कारण शरीर को बिगाड़ने वाले या कीटों के लिये उर्वरा भूमि थे उनकी ओर ही लक्ष्य रहा और इस ही से क्षय रोग में उन्हों ने कीट नाशक प्रयोगों को नहीं लिखा। यदि उत्तम स्वास्थ्य गृहों में आयुर्वेदीय प्रणाली से प्राकृतिक या धातु वर्द्धिनी चिकित्सा की जावे तो वास्तविक लाभ पहुंचे। उत्तम चिकित्सा न होने के कारण आज कल स्वास्थ्य गृहों में रह कर अधिक धनव्यय करके भी बहुत से रोगी स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते। बहुत से अच्छे डाक्टर इस कीट नाशिनी चिकित्सा के पक्ष में नहीं हैं।

कीटाणुओं का नाश



डाक्टर लोग क्षयरोग का मुख्य कारण कीटाणुओं को मानते हैं। और उन के नाश करने को ही चिकित्सा का प्रधान सिद्धान्त समझते हैं। इस के लिये वे प्रायः विषैली औषधियां देते हैं, परन्तु इस चिकित्सा से स्थिर लाभ नहीं हो सकता। मूल भित्ति को छोड़ कर ऊपरी चिकित्सा करना कभी स्थिर लाभ नहीं देता। जैसे किसी कमरे में कूड़ा करकट भरा पड़ा है और उस में अनेक कीट पैदा होगये हैं जिन से कि स्वास्थ्य बिगड़ता है ऐसी अवस्था में उन कीटों को नाश करने के लिये फिनाइल छिड़काव या धूआं आदि करना उत्तम या टिकाऊ उपाय नहीं है क्योंकि कीटों को उत्पन्न करने वाला कूड़ा करकट जोकि कीटों को पुनः उत्पन्न कर देगा अभी दूर नहीं किया गया, शरीर में कीटाणुओं को नाश करने के लिये जिन कारणों से कीट उत्पन्न होते हैं उन्हें दूर करना ही सर्वोत्तम उपाय है। विषैली औषधियों से कीटों का ठीक नाश तो होता नहीं प्रत्युत शरीर धातु और भी बिगड़ जाते हैं। आज कल प्रायः इस ही प्रकार की चिकित्सा से डाक्टर लोग काम ले रहे हैं परन्तु ऊपरी साधन करते होने पर भी कभी वे इस प्रणाली से अच्छा लाभ नहीं दिखा सके। यदि उत्तम आहार विहार की योजना कर रोगी बिना औषधि के ही रक्खा जावे तो भी हम इसे इस विषैली चिकित्सा से अच्छा समझते हैं। हमने बहुत से धनाढ्य रोगी ऐसे देखे हैं जो कीटनाशनी पिचकारी आदि लगवाने पर कुछ दिन अच्छे होते हैं, परन्तु पीछे वही टांय टांय फिस। डाक्टर लोग चाहे कितनी ही शेखी मारें और पाश्चात्य चिकित्सा की

हिमायतियों के ज़ोर से कितनी ही मृली बोज अ थे परन्तु अभी वे प्राचीन ऋषियों की चिकित्साप्रणाली से बराबरी करने लायक नहीं हुए। हमारे शास्त्रों में क्षय रोग का कारण कीटाणुओं को भी माना है परन्तु जैसे डाक्टर लोग इस के पीछे पड़े हैं वैसे उन्होंने इस का वर्णन और परवाह नहीं की क्योंकि उन की चिकित्सा प्रणाली स्थिरता रखती थी। वे जानते थे कि बिना उपयुक्त भूमि मिले कीटाणु उत्पन्न नहीं हो सकते, और उत्पन्न हो भी जावें तो रोग पैदा नहीं कर सकते इसलिये रोग कारण शरीर को बिगाड़ने वाले या कीड़ों के लिये सर्वदा भूमि दे उनकी ओर ही लक्ष्य रहा और इस ही से क्षय रोग में उन्हों ने कीट नाशक प्रयोगों को नहीं लिखा। यदि उत्तम स्वास्थ्य गृहों में आयुर्वेदीय प्रणाली से प्राकृतिक या धातु वनस्पती चिकित्सा की जावे तो वास्तविक लाभ पहुंचे। उत्तम चिकित्सा न होने के कारण आज कल स्वास्थ्य गृहों में बहु कर अधिक धनव्यय करके भी बहुत से रोगी स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते। बहुत से अच्छे२ डाक्टर इस कीट नाशिनी चिकित्सा के पक्ष में नहीं हैं।

आयुर्वेदीय मत से

चिकित्सा क्रम



जिन कारणों से जो रोग उत्पन्न हो उन कारणों को दूर करना ही उद्देश्य से इस रोगी की चिकित्सा है। पहले दोषों में यक्ष्मा के कारणों का सविस्तार वर्णन किया है अतः इन्हें दूर करना ही क्षयरोग की चिकित्सा सम्बन्धी पहली सीढ़ी है। चरक शास्त्र में इस रोग के चार कारण साहस सन्धारणादि बतलाये हैं जिनका कि पहले उल्लेख हो गया है। इन कारणों को दूर करने के लिये चिकित्सक को सदैव सावधान रहना चाहिये। रोगी, साहसिक कर्म, और वेगरोधना त्याग दे यथा समय हित भोजन करे, और धातुओं की वृद्धिकर प्रयोगों का सेवन करे। वैद्यक शास्त्र में वैद्य के लिए आज्ञा ही है कि क्षयी पुरुष को मल और शुक्र की रक्षा करता रहे। जो वैद्य मल का भेदन, या धातुओं की रक्षा न कर रोगी का निर्बल बनाता है वह चिकित्सक नहीं कहा सकता। क्योंकि।

मलायत्तं बलं पुँसां शुक्रायत्त तु जीवनम् ।
तस्माद्यत्नेन संरक्षेत् यक्ष्मिणो मल रेतसी ॥

मनुष्यों का बल मल के, और जीवन वीर्य के आधीन है। इस से यक्ष्मा वाले रोगी को इन दोनों की रक्षा यत्न से करनी चाहिये।

वैद्यों को चाहिये कि उपद्रवों की चिकित्सा करते हुए भी इन दोनों को सावधानी से देखता रहे कि कहीं रोगी नित्य प्रति दुर्बल तो नहीं होता, और मल अपक्व तो नहीं है। बल की जांच के लिये रोगी का प्रति सप्ताह वजन कराता रहे और उसकी मानसिक शक्ति की जांच करता रहे। जो वैद्य बिना विचारे ऊटपटांग दवा देकर रोगी को जुलाब करा देते हैं या वमनकार कराते हैं वे रोगी को मृत्यु के मुख में ढकेलते हैं। क्षय रोगी की जीवनशक्ति तब ही तक रहती है जबतक कि वह डोलता फिरता और कुछ खा लेता है। खट्वाशायी क्षयरोगी बचते हुये प्रायः देखे नहीं जाते। पंचकर्म जो आयुर्वेदीय चिकित्सा का मुख्य अंग है यक्ष्मा वाले को तब ही कराया जा सकता है जब तक कि वह क्रियाओं को सहसकने वाला और बलिष्ठ हो।

॥ तात्कालिक चिकित्सा ॥

प्रतिश्याय (जुकाम)

इस रोग में अधिकांश रोगियों को जुकाम ज्यादा होता है इसलिये प्रतिश्याय नाशक मुख्य २ अनुभव में आए प्रयोगों को लिखते हैं।

प्रतिश्याय होते ही रोगी ऐसी जगह सोवे या बैठे जहाँ हवा का शीतल वायु न चलता हो शिर पर गरम कपड़ा बाँध ले। शरीर पर भी उष्ण वस्त्र धारण करे प्रतिश्याय रोकने के लिये कोई तीक्ष्ण और गरम वस्तु न खावे, पहले ऐसी साधारण औषधि खावे जिस से यह आसानी से झड़ जावे ॥

(१) मिश्री २) तोला कालीमिर्च पन्द्रह दाने (२) बादाम ७) दाने मिश्री १) तो० (३) मिश्री १) तो मुलैहठी ६ मा० कालीमिर्च १० दाने (४) गेहूं की भूसी २) तो० मिश्री १) तो० कालीमिर्च १० दाने (५) गुलबनफ्सा ३ मा० उन्नाव ४ दाने मुनक्का ७ दाने मुलैहठी २ माशे खतमी के बीज २ माशा। इन में से किसी प्रयोग को पाव भर पानी में औटावे जब आधा रह जावे तब छान कर पीवे। खाँसने से कफ न निकलने पर नं० २ प्रयोग में खाँसी होने पर नं० ४ साथ में सूखी खाँसी आने पर नं० ३-५ का प्रयोग काम में लावे यदि मवाद में कफ भरा हो और वेग जारी हो तो इस दवाई को जुकाम को सूंघे-धर्म निरवन, उस्तखद्दूस गुल..., इलायची के छिलके ये सब बराबर लेकर बारीक ... (२) कलौंजी, सेहुंड़ के बीज,

वायविडंग, काली मिरच, इनको बारीक पीस कर बहुत थोड़ी मात्रा सूँघें (३) आक के पत्तों का स्वरस निकाल कर दो तीन बूंदें नासिका में डाले। सिर दर्द होता हो तो (१) चूने को बहुत महीन पीस कर गाढ़े के कपड़े में छान ले पीछे उस में थोड़ा घी मिलाकर खूब घोटे जब मलहमसा बन जावे तब इसका मस्तक पर लेप और मालिश करे (२) केशर १ मा० कपूर २ मा० बादाम की मिंगी ३ मा० मिश्री १ मा० इन को पानी में पीस दो तोले घी डाल अग्नि पर गरम करें जब पानी जल जावे तब घी को छान कर उस को मस्तक पर मालिश करे और नासिका द्वारा ऊपर को चढ़ावे (३) नौसादर और चूना इन दोनों को मिलाकर शीशी में भरदे पीछे उस में पानी भर कर मुंह में डाट लगा दे डाट खोल कर शीशी के मुंह को नासिका से लगा कर सूंघे (४) लाल कनेर के पुष्पों को घी में घोट कर मस्तक पर मले (५) रेणुका, तगर, पाषाण भेद मोथा, छोटी इलायची, अगर, देवदार, बालछड़ बायबडिंग की मिंगी, इन को पानी में पीस कर लेप करे॥

यदि ज़ुकाम से ज्वर आ जावे तो (१) मुनक्का ६ माशे मुलैठी माशे ६ कटेहरी की जड़ माशे ६ (२) बांसे की जड़ ६ माशे कटेहरी की जड़ मा० ६ गिलोय माशे ६ (३ गिलोय कुटकी, नीम की छाल पटोल पत्र, मोथा, लाल चन्दन, सोंठ, इन्द्र जौ तीन २ माशे इन में से किसी क्वाथ को पाव भर पानी में औटावे जब छटांक भर रहे तब छान कर पिलावे॥

जिन मनुष्यों को ज़ुकाम बार २ हो या बना रहे वे आयुर्वेदोक्त प्रसिद्ध प्रयोग जैसे, जातीफलादि, लवंगादि चूर्ण, च्यवन प्राश, षिप्पल्यादि लेह, द्राक्षासव दशमूलारिष्ट आदि किसी औषधि का सेवन बराबर करता रहे।

❀ खांसी ❀

इस रोग में खांसी अवश्य होती है और प्रायः सूखी खांसी आया करती है। इसी खांसी के लिये गरम औषधियां नहीं खानी चाहिये। क्योंकि गरम दवाइयों से खून का निकलना है। तर गरम दवाइयां ही अधिक लाभ देती हैं। स्निग्ध पदार्थ ऐसी खांसी में लाभ किया करते हैं। थोड़े से छोटे २ प्रयोग नीचे लिखते हैं जिन से खांसी कम हो जावे और आसानी से कफ निकले॥

चलादिकाथ | खिरेटी, मुनक्का, कटेहरी की जड़, अडूसे की जड़ इन चारों औषधियों को छः छः माशे लेकर कुचलकर पावभर पानी में औटावे जब छटांक भर रहे तब छान कर शहद माशे ६ डालकर पीवे।

एलादिवटी | इलायची छोटी, तेजपात, दालचीनी, मुनक्का पीपल छोटी, ६। ६। माशे मिश्री, मुलेहठी, खजूर, किशमिश एक २ तोले इन को शहद डालकर झरबेर बराबर गोली बनाले और दिन रात में दस पांच बार मुंह में डाल कर चूसता रहे।

मिर्चादिवटी | गोंद बबूल, मुलेहठी का सत, मिर्चकाली, मिश्री इन को कपड़ छन कर पानी डालकर गोली बनावे और मुंह में डाला करे।

यवामादिवटी | अजामे की जड़, पीपर छोटी के बीज, मुनक्का, काकड़ासींगी इन को पीस कर शहद के साथ गोली बनावे और मुंह में डाले।

खैरसारादि | पथरिया कत्था ४) तोला, खतमी के बीज २) तोला, गोंद बबूल १) तोला, कतीरा १) तो०, बहेड़े का बक्कल १) तोला, मुलेहठी २) तोला, कपूर माशे ६, इन को बारीक पीस बिहीदाने के लुआब में घोट कर गोली बनावे यह खांसी के लिये बड़ा अच्छा प्रयोग है।

शुष्क कासारि चूर्ण | कतीरा गोंद तोला १) गोंद बबूर १) तोला मुलहठी १) तोला वंशलोचन तोला १) जौकी की मिंगी १) तोला इन को पीस कर दो दो माशे शहद में मिलाकर चाटे-

कफार्द्रावलेह- | हंसराज तो० १) मुलेहठी तो० १) खतमी के बीज माशे ९ उन्नाब तोले १॥) जूफा माशे ६ इन दवाओं को कुचल कर आध सेर पानी में औटावे जब आध पाव रहे तब आध पाव मिश्री डाल कर चाशनी ले और शर्बत बना कर चाटता रहे।

इसी प्रकार वासावलेह, वासाकूष्माण्डावलेह, कूष्माण्डावलेह, द्राक्षासव, बब्बूलारिष्ट, मृगांक पोटलीरस, सितोपलादि चूर्ण मक्खन के साथ, लोकनाथरस, शृंगाराभ्रवटी, आदि प्रसिद्ध औषधियां भी बड़ी लाभ दायक हैं॥

|| रक्तागम ||

क्षय, रक्तपित्त, उरः क्षतादि रोगों में खांसी के साथ रक्त आता है। उस से रोगी निर्बल हो जाता है। रक्त को एक साथ बन्द करने के लिये कोई उपाय न करे। सहसा रक्त बन्द करने से भी हानि होती है ॥

(१) बबूल की कोंपल, अनार के पत्ते, आंवले, धनियां, इन की तीन२ माशे लेकर रात को ऽ– छटांक भर पानी में भिगोदे सवेरे मल छान कर मिश्री मा० ६ मिला कर पीवे।

(२) लाख पीपल की दुग्ध में औटा कर या पीस कर शहद में मिलाकर चाटे–

(३) कच्चे गूलर का स्वरस तोले १) शहद माशे ३ मिलाकर चाटे।

(४) सितोपलादि चटनी माशे २ नागकेशर माशे १ दोनों को मिलाकर मक्खन या चीनी, मिलाकर चटावे।

५) नेत्रबाला, कमल, धनिया, चन्दन, मुलेहठी, गिलोइ, खस, अडूसा, इनका क्वाथ बनाकर पीवे।

६) इपरी पगोली, कमल की जड़, कमल केशर, मोचरस, मुलेहठी, पद्माख, बड़की कोंपल, मुनक्का, खजूर इनका काढ़ा बना कर पीवे।

(७) मुलहठी, और दुग्ध औटा कर मिश्री और शहद मिला कर पीवे।

(८) मेमयाला, खजूरा, मुनक्का, मुलेठी, फालसा, इन औषधों के काढ़े में मिश्री मिलाय कर पीवे।

(९) पोस्त के दाने, बादाम की मिंगी, इन को भिगोकर पीस कर मिश्री मिलाकर पीवे।

(१०) नासिका से रुधिर गिरता हो तो दूध, अनार की कली, कपूर इनको पीस कर सेवन करे या नासिका से सूंघे (२) शिर पर फिटकिरी के पानी से भीगे हुए कपड़े को रक्खे।

इस के अतिरिक्त, उशीरादि चूर्ण, उशीरासव, लेहकाद्यवलेह, दूर्वादि घृत, कूष्माण्डावलेह, लोहभस्म, आदि प्रयोग भी बहुत अच्छे हैं।

यक्ष्मा के विशेष २ प्रयोगों का वर्णन

धनहीन यक्ष्मियों के लिये कुछ प्रयोग

❋ प्रयोग पंचदशी ❋

(१) लघु लोकनाथरस (२) अमृतेश्वररस (३) क्षय केसरी (४) यक्ष्मांतक लोह (५) वृहत् वासावलेह (६) जीवन्त्यादि घृत (७) द्राक्षारिष्ट (८) यवासारिष्ट (९) पिप्पल्यासव (१०) सितोपलादि चूर्ण (११) जातिफलादि चूर्ण (१२) तालीसादि वटिका (१३) यवानी खांडव (१४) चन्दनादि तैल (१५) अशोकारिष्ट।

❋ उपयोग ❋

(१) लघुलोकनाथरस (२) अमृतेश्वर (३) क्षय केशरी (४) यक्ष्मांतक लोह	ये चारों प्रयोग पिप्पली और काली मिर्चों के चूर्ण के साथ मधु या मक्खन अथवा जीवन्त्यादि घृत में मिला कर बलानुसार अहोरात्र में

तीन चार बार या न्यूनाधिक जैसा वैद्य योग्य समझे सेवन कराना उत्तम है, ये प्रयोग ज्वर, कास, श्वास अग्निमांद्यादि यक्ष्मा के सम्पूर्ण रोगों में उपयोग कराने योग्य है, इनसे यक्ष्मा के सब रोगों को लाभ होना है।

(५) बृ० वासावलेह—यह अवलेह अहोरात्र में तीन, चार वा अधिकवार जैसा वैद्य योग्य समझे सेवन करावे, यह यक्ष्मा के क्षतज क्षयजादि सम्पूर्ण कासों के लिये आयुर्वेद में एक अमोघ औषधि है। इस के सिवाय वमन, रक्तपित्त, क्षयरोग, उरः क्षत, श्वासश्वास हृदयशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, ज्वर इन सब रोगों में यह, अवलेह, अवश्य प्रयोग में लाना चाहिये, यक्ष्मा के लिये यह अवलेह जीवन स्वरूप है।

(६) जीवन्त्यादि घृत—यह घृत यक्ष्मा के एकादशरूपों में सेवन करना योग्य है। इसे भी अहोरात्र में तीन चार बार देना चाहिये। यह घृत यक्ष्मा के ज्वर और कास और पार्श्व शूलादि को शीघ्र दूर करता है। और बल को बढ़ाता है।

(७) द्राक्षारिष्ट—इसे उरःक्षत, दाहरोग, क्षयजादि सम्पूर्ण कास श्वास, कण्ठरोगों में, सेवन कराना योग्य है फुफ्फुसादि को शुद्ध करने के लिये तथा उनको बलवान बनाने के लिये यह दूसरा अमृत है। इसका प्रयोग अहोरात्र में तीन चार बार कराना योग्य है, यक्ष्मी कुछ पथ्य ले चुके तो उस के अनन्तर यह अरिष्ट पिलाना चाहिये। यह पाचक और रोचक भी है।

(८) बब्बूलारिष्ट—क्षयज शुष्क कास को आर्द्र करता है, फुफ्फुसादि के चिपटे हुए कफ को बाहिर निकालता है। तथा अतीसार को दूर करता है। प्रमेह को नष्ट करता है। कुष्ट को नष्ट करता है। स्त्रियों के प्रदर में लाभकारी है। धातु क्षय को उपकारी है। अतएव क्षय, अतिसार, प्रमेह, शुष्क कास श्वास में इस का प्रयोग करना योग्य है। यह भी दोषानुसार दो तीन चार बार सेवन कराना योग्य है।

(९) **पिप्पल्यासव**—इसका उपयोग क्षय की ऐसी अवस्था में करना चाहिये जब कफ विशेषतया निकल रहा हो कफ निकलने से रोगी दुर्बल होगया हो, यह उदर रोग, ग्रहणी, पांडु, अर्श में भी यथा समय दिया जाता है। और यदि साधारण कफ निकलने में १ बार देने से कोई हानि न दीखे तो प्रयोग करना योग्य है। इसको परीक्षा कर देखते, यह अग्नि की शक्ति को बहुत शीघ्र तीव्र करता है। यदि यह सात्म्य हो जावे तो रोगी को अन्न पर शीघ्र रुचि आती है।

(१०) **सितोपलादि चूर्ण**—यह शहद अथवा शहद और घृत में मिलाकर तीन चार बार चाटना चाहिये यक्ष्मा के कास श्वास को लाभ पहुंचाता है। रुचि का शीघ्र अन्न पर लाता है। दाह तृषा को दूर करता है, अग्नि को बल देता है। ज्वर को शरीर से निकालता है। अतएव इन रोगों में इस का प्रयोग कराना योग्य है।

(११) **जातीफलादि**—यह चूर्ण अतिसार, संग्रहणी अरुचि, प्रतिश्याय, अग्नि मांद्य, कास, श्वासादि यक्ष्माके रोगों में उत्कृष्ट औषध है। यक्ष्मा के दस्तों में बकरी के दूध के साथ इसे देना उपकारी है।

(१२) **तालीसादि वटिका**—यह गोली मुख में प्रत्येक समय रखने से मुख वैरस्य, कासादि नष्ट होते हैं।

(१३) यवानी खाण्डव—मुख वैरस्य, हृद्रोग, प्लीहा, पार्श्वशूल, विबन्ध, आनाह, कास, श्वास में देना परम उपयोगी है, भोजन रुचि उत्पन्न करता है। और खाने में सुस्वादु भी है।

(१४) चन्दनादि तैल—शरीर पर मर्दन किया हुआ पुराने ज्वर, पुराने कास को लाभ पहुंचाता है। बल और वर्ण सौन्दर्य को बढ़ाता है। यक्ष्मा में इस तैल का मर्दन कराना योग्य है। यक्ष्मा के लिये यह तैल परम औषधि है।

(१५) अशोकारिष्ट—स्त्रियों की चिकित्सा में उपयोगी होता है, यदि किसी को प्रदर रोग हो तो यह अरिष्ट स्वतंत्र या द्राक्षारिष्टादि में मिलाकर पिलाना योग्य है।

सामर्थ्यवन्तों के प्रयोगों का वर्णन

प्रयोग पंचविंशतिः।

---

(३) राज मृगांक—क्षय रोग की सुप्रसिद्ध महौषध है। क्षय सम्बन्धी सब विकारों में दी जाती है, अनुपान- पीपल और, कालीमिर्चों के चूर्ण के साथ। विषम भाग प्राप्त मधु और घृत में मिला देना योग्य है- अथवा पीपर और कालीमिर्चों की संख्या रोग बलानुसार निर्णीत करलें, प्रातः सायं दो समय तो देना ही चाहिये। रोगी सह सके तो अधिकतया ४ बार तक दी जा सकती है। इसका प्रयोग अल्प मात्रा में करें। प्रारम्भिक मात्रा १ रत्ती होना योग्य है। पीछे रोगी के बलानुसार इस की मात्रा बढ़ा देना योग्य है॥

(४) महा मृगांक— (५) हेम गर्भ पोटली (६) मल्ल गर्भ पोटली (७) बृः कांचनाभ्र रस आदि भी क्षय रोग की सुप्रसिद्ध महौषध हैं। इन का उपयोग राजमृगांकवत् करना चाहिये। इन की मात्रा ४ चा० से प्रारंभ करना अच्छा है। ५१ हेम गर्भ पोटली की विधि इस के प्रयोग में देखो॥

(८) बृ० वासावलेह —इस के उपयोग के विषय में लिख चुके हैं॥

(९) च्यवन प्राश— (१०) अमृत प्राशावलेहों का उपयोग बृ० वासावलेह के समान होता है। बृ० वासावलेह की अपेक्षा यह अवलेह कुछ शीघ्र फल दिखाते हैं, यह अवलेह मूत्र कृच्छ्र और प्रमेह को भी अत्यंत लाभ पहुंचाते हैं॥

(११) जीवन्त्यादि घृत— इस के सेवन के विषय में लिख चुके हैं॥

(१२) सुश्रुतोक्त एलादि घृत— यह घृत जीवन्त्यादि की अपेक्षा शीघ्र लाभ करता। है इस के सेवन में इतनी विशेषता है कि इसका सेवन ऊपर के दूध अनन्तर पीवे। यह दूध का अनुपान जीवन्त्यादि अन्य घृतों में भी करना प्रशस्ततम है, यह स्त्रियों के प्रदर के लिये भी उत्तम है। पुरुषों के प्रमेह को भी लाभ करता है। यक्ष्मा के लिये एक अनन्यतम औषध है। सुश्रुताचार्य इसे केवल प्रातः काल देने को कहा है। सुवर्णादि रस इस घृत के अनुपान से सेवन किये जांय तो शीघ्र ही लाभकारी होते हैं॥

(१३) द्राक्षादि घृत— उरःक्षत, कास, श्वास, ज्वर, दाह, पांडु, प्रदर और रक्त पित्त रोगों में इसे सेवन करना योग्य है, यह घृत भी जीवन्त्यादि घृतों की भांति सेवन किया जा सकता है। घृतों में मुक्तादि चूर्ण और सुवर्णभस्म डाल देना भी अच्छा है॥

(१४) द्राक्षारिष्ट (१५) बब्बूलारिष्ट (१६) पिप्पल्यासव—इन के सेवन की विधि लिखी जाचुकी है।

(१७) दशमूलारिष्ट— यह भी धातु पुष्टि करता है। स्त्रियों को भी सेवन कराना योग्य है, सभी के ज्वर को शीघ्र निकालता है।

[१८] एलादिगुटिका [१९] तालीसादिगुटिका— दोनों को मुख में रखने से कास मुख वैरस्य, ज्वर, अरुचि आदि दूर हो जाते हैं।

[२०] सितोपलादि चूर्ण, [२१] जातीफलादि चूर्ण, [२२] यवानी खाण्डव [२३] चन्दनादि तैल— इन सब के सेवन की विधि लिखी जा चुकी है ॥

[२४] लाक्षादि तैल—चन्दनादि के समान इस का भी उपयोग है ॥

[२५] अशोकारिष्ट— इस की भी विधि लिख चुके हैं ॥



प्रयोगावली

आटरूपादिकाथ—अडूसा, सिरस की छाल, असगंध, सांठ का जड़, इनका काथ सथरोग में उस अवस्था में लाभ देता है जब कि खांसी, शरीर में दर्द और किसी स्थान में सूजन हो।

त्रयोदशांग काथ—धनियां, पीपल, सोंठ, दश मूल, इनका क्वाथ पार्श्वशूल, श्वास दुःसाध्य और ज्वर को दूर करता है वात और कफ की अधिकता में देना चाहिये।

दशमूलादिकाथ—दशमूल, खिरेटी, रायसन, पोहकरमूल, देवदार मोथा, इनका काथ पसवाड़ा, कन्धा, मस्तिष्क इन के शूल को और उरःक्षत खांसी श्वास को दूर करता है।

वलादि काथ—खिरेटी, विदारीकंद, खम्भारी, सेवती के फूल, सितावर, सांठकीजड़ इन औषधियों को दूध में औटाकर छानकर और शहत मिलाकर पीने से क्षय शोषादि के दुर्बल रोगी का बल बढ़ता है तथा खांसी को नष्ट करता है।

द्वितीयवलादिकाथ—खिरेटी, दोनों कटेरी की जड़, मुनक्का, अडूसे के पत्ता, इन के काथ में शहद डाल कर और मिश्री डालकर पीने से क्षय जन्य शुष्ककास दूर होता है।

उपरोक्त क्वाथों की, औषधियां समान भाग लेनी चाहिये। और १ मात्रा दो तोले की बनानी चाहिये। उसे पावभर पानी में औटाओ जब दशांक भर रहे जब छानना चाहिये। मिश्री शहत जो प्रयोग में हैं उन्हें एक खुराक में चार २ माशे डालने चाहिये।

मुक्तादि चूर्ण–मोती तोले १, कहरवा ३ माशे, सोने के वर्क ३ माशे, चांदी के वर्क ६ माशे, कस्तूरी १॥ माशे, वंसलोचन ६ माशे छोटी इलायची के बीज ३ माशे पीपर के दाने ३ माशे प्रथम मोतियों को गुलाब जल में खरलकर उस में स्वर्ण और चांदी के वर्क खरल करले, पश्चात् सूखने पर अन्य औषधियों को दूसरे खरल में घोटकर मिलाले और ३ रत्ती चूर्ण को १ तोले मक्खन और ४ माशे शहद में मिला कर सब रोग की उस अवस्था में देवे जब कि ज्वर की मन्द उष्मा हो रोगी निर्बल हो और कफ की अधिकता हो।

सितोपलादि चूर्ण–मिश्री १६ माशे वंसलोचन ८ माशे पीपर छोटी ४ माशे, छोटी इलायची के दाने २ माशे दालचीनी १ माशे, इन सब को कूट कर चूर्ण बना लेवे, इस में से २ माशे चूर्ण को एक तोले मक्खन और ४ माशे शहद में मिला कर सब रोग की उस अवस्था में जब कि शुष्कखांसी, दाह, पाद दाह, ज्वर अथवा अरुचि, हो देवे।

जातीफलादि चूर्ण–जायफल, वायविडंग, चीतेकी छाल तगर, तिल, तालीसपत्र, चन्दन सफेद, सोंठ, लोंग, कालाजीरा, भीमसेनीकपूर, हरड़, आंमले, पीपलछोटी, वंसलोचन, दालचीनी, तेजपात, इलायचीछोटी, नागकेशर, यह सब औषधियां तीन २ तोले ले और भांग २८ तोले ले और सब की बराबर मिश्री मिला सब को कूट कपड़ छनकर चूर्ण बनावे। जब क्षयरोगी को दस्त होते हों या भूक न लगती हो अरुचि हो खांसी हो उस अवस्था में २ माशे चूर्ण को ६, ६ माशे शहद में मिलाकर चाटना चाहिये।

यवानी खांडव—अजमोद अनार दाना, सोंठ, ततड़ीक, अमलवेंती, बेर खट्टे ये औषधियां बारह माशे काली मिर्च ढाई माशे, पीपर छोटी १० माशे, दालचीनी, काला नोन, धनियाँ, जीरा सफेद, ये प्रत्येक दो दो माशे और मिश्री ६४ माशे ले सब का चूर्ण करले । यह चूर्ण २ माशे जल के साथ, क्षय के साथ जब अरुचि हो, दे ।

लवंगादि चूर्ण—लोंग, कंकोल मिर्च, खस, सफेद चन्दन, तगर, कमलगट्टा, काला जीरा, छोटी इलायची काला अगर, नाग केशर, छोटी पीपल, सोंठ, बालछड़, नेत्र वाला, कपूर, जायफल, वंसलोचन. ये सब औषधियां बराबर २ लेवे और सब की आधी मिश्री मिलावे । यह चूर्ण १॥ माशे से २ माशे तक शहद के साथ दे । यह चूर्ण दाह, अरुचि, ज्वर को दूर करता है । वीर्य्य वर्द्धक और जठराग्नि प्रदीपक है ।

द्राक्षादि चूर्ण—मुनक्का, खील, मिश्री, मुलेहठी, खजूर, सारिवा, वंसलोचन, नेत्र वाला, आंमले, मोथा, चन्दन सफेद, बालछड़, कंकोल, जायफल, दालचीनी, तेजपात इलायची छोटी, नाग केशर, पीपल छोटी, धनियाँ ये सब औषधियां समान भाग ले और सब की बराबर मिश्री मिलावे । इस की मात्रा २ माशे से ६ माशे तक है, अनुपान जल व दुग्ध के साथ पित्त, पित्तदाह, मूर्च्छा, वमन, अरुचि, क्षय, ज्वर, रक्तपित्त, और रक्त विकार के लिये देना चाहिये ।

कर्पूरादि चूर्ण—कपूर, दालचीनी, कंकोल, जायफल, तेजपात यह समानभाग लेवे, लोंग १ जटामांसी २ कालीमिर्च पीपल ४ सोंठ ५ भाग ले और सब औषधियों के बराबर मिश्री मिला कपड़ छन कर चूर्ण बनावे इस की मात्रा १ माशे से

माशे तक अनुपान शहद व दूध के साथ। यह चूर्ण हृदय को हितकारी, क्षय, खांसी, श्वास और कंठ रोग नाशक है।

रास्नादि चूर्ण—रास्ना, कपूर, तालीसपत्र, मजीठ, शिलाजीत, त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडंग, चीतेकी छाल, ये औषधि समान भागले और लोहभस्म १४ भाग ले सब को कपड़छन कर चूर्ण करले। इस चूर्णकी एक माशे मात्रा शहद माशे ४ और घी माशे ६ में मिला कर क्षय की इस अवस्था में दे जब कि शुष्क खांसी और रोगी बल हीन हो। यकृत, तिल्ली, बढ़ गई हो पेटमें दर्द और अग्नि मन्द हो कफ के साथ रक्त जाता हो।

उशीरादि चूर्ण—खस, तगर, सोंठ, कंकोल, चन्दन, दोनों, लौंग, पीपरा मूल, पीपल छोटी, इलायची छोटी, नाग केशर, मोथा, आंवला, कपूर, तबाखीर, तेजपात, काला अगर, ये समान भाग लेवे तथा इन सब का अष्टमांश मिश्री मिलाय चूर्ण करे। यह रक्त वांति (खून की वमन) और हृदय का संताप इन को नष्ट करता है। मात्रा २ माशे से ६ माशे तक अनुपान जल व दूध॥

तालीसादि चूर्ण—तालीसपत्र १ काली मिर्च २ सोंठ ३ पीपल छोटी ४ वंश लोचन ५ दाल चीनी अर्ध भाग, इलायची छोटी अर्द्ध भाग और मिश्री ३२ भाग ले चूर्ण करें यह चूर्ण खांसी श्वास, अरुचि, हृदयरोग, शोथ, ज्वर कफ नाशक और अग्नि वर्धक है॥

एलादि गुटिका—इलायची छोटी ६ माशे तेजपात ६ माशे दालचीनी ६ माशे मुनक्का और पं. छोटी दो दो तोले मिश्री ४ तोले मुलेठी ४ तोले खजूर ४

किशमिश ४ तोले इन को पीस कर शहद में गोली झरबेर के बराबर बनावे। इन गोलियों से उरःक्षत, शोष, ज्वर, शुष्क खांसी, तृषा, अरुचि, स्वरभंग ये सब नष्ट होते हैं।

सूर्यप्रभा गुटिका—दारुहल्दी, सोंठ, काल मिर्च, पीपल छोटी, वायविडंग, चीतेकीछाल, वच, हल्दी, पंजा, गिलोय, देवदार, चतीस, निसोथ, कुटकी, धनियाँ, अजमायन, जवाखार, सुहागो, सेंधानमक, कालानमक, कच-लोना, गजपीपल, चव्य, सिंघाड़े, तालीसपत्र, पीपलामूल, पोहकरमूल, चिरायता, भारंगी, पद्माख, जीरा सफेद, जायफल, कुड़ा की छाल, दंती, मोथा, ये औषधियां एक एक तोला ले और त्रिफला २० तोला शिलाजीत २० तोला गूगुल ३२ तोले लोहभस्म २८ तोले स्वर्ण माक्षिकभस्म ८ तोला मिश्री २० तोला वंसलोचन, दालचीनी, तेजपात इलायची छोटी ये औषधियां चार चार तोले ले, और सब का चूर्ण बना घी, शहद में पीस गोली झरबेर के बराबर बनावे। जिस रोगी को घाव के साथ वीर्य विकार भी हो उस के लिये यह अतिखास दायक है और खांसी उरःक्षत शोष मंदाग्नि को दूर करती है।

च्यवनप्राश्यावलेह—शालपर्णी, पृष्णपर्णी, कटेरी दोनों की जड़, गोखरू की जड़, बेल की जड़ की छाल, अग्निमंथ, स्योनाक, खम्भारी, पाठा, खिरेंटी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी काकड़ासिंगी, भूमिआमला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकर-मूल, अगर, हरड़, गिलोय जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, कचूर, मोथा, सांठ की जड़, मेदा, इलायची छोटी, कमलगट्टा चन्दन-सफेद, विदारीकंद, बांसे की जड़, काकोली, काकनासा ये प्रत्येक चार चार तोला, आंवले ५०० नग, जल १ द्रोण (१६ सेर) शेषजल एक आढ़क घृत २० तोला, तैल सरसों का २० तोले,

मिश्री २०० तोले, शहद २० तोले, वंसलोचन १६ तोला, पीपल-छोटी ८ तोला दालचीनी, इलायची छोटी, नागकेशर, ये सब ४ तोला लेवे ॥ बनाने की विधि —

प्रथम शालपर्णी से काकनासा तक औषधियों को जौ कुटकर आमले पानी के साथ एक गागर (मटका) में भर कर औटाओ जब चौथाई शेष रहे तब आंमले निकाल अलग रक्खे और दवा में से पानी (क्वाथ) अलग निकाल ले। इन उवाळे हुये आंमलों को मथ और गुठली निकाल कपड़ा में छान ले, और घृत, तैल, दाल चीनी की कढ़ाई में आंमले के गूदे को भूनलो फिर क्वाथ (जो आंमले के साथ औषधियां औटाई गई थी) में मिश्री डाल चासनी करे जब चासनी होजाये तब वंसलोचन से नाग केशर तक औषधियो को कूट कपड़छन कर मिलादे तथा शहद और भूना आंमले का गूदा डाल अवलेह तैयार करे। यह अवलेह एक एक तोले दूध के साथ क्षय रोग की उस अवस्था में दे जब कि रोगी दुर्बल हो, वात पित्त की खांसी हो, दाह हो, वीर्य्य विकार हो, कफ के साथ रक्त जाता हो, कंठ का स्वर क्षीण होगया हो,।

अमृत प्राश्यावलेह—गाय का दुग्ध, आंमले, विदारीकंद, ईख, और क्षीर वृक्षों का रस एक २ सेर घी, एक सेर, मुलैठी, ईख, मुनक्का, दोनों चन्दन, खस, मिश्री, कमलगट्टा, महुआ के फूल, पदमाख, टवासेशीजड़, खम्भारी, रोहिषतृण, ये सब औषधियों कल्कार्थ डेढ़ २ तोले ले, घृत पाक विधि से घी सिद्ध करले, पीछे इस घी में आध सेर शहद और मिश्री ५ सेर तथा दालचीनी, इलायची छोटी, तेजपात, नाग केशर दो दो तोले को चूर्ण कर मिलावे, इसे अमृतप्राश्यावलेह कहते हैं।

एक तोले अवलेह दुग्ध के साथ खिलावे। इससे रक्त पित्त, क्षत क्षय, श्वास, खांसी, अरुचि, हिचकी, मूत्रकृच्छ्र और ज्वर दूर होते हैं, और बलवर्द्धक है।

वृ० वासावलेह—वांसा ४०० तोले को एक द्रोण (१६ सेर) पानी में पकावे चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छानले। पुनः इस जल में ४०० तोले मिश्री मिलाकर मन्द अग्नि से चासनी अवलेह की करले। और सोंठ, मिर्च कारी, पीपल छोटी, इलायची, दालचीनी, तेजपात, कायफल, मोथा, कूट, जीरे दोनों, निशोथ, पीपरा मूल, चव्य कुटकी, आंमले, तालीसपत्र, धनियां, वसलोचन, ये सब औषधियां दो २ तोले ले चूर्ण कर मिलाले और शीतल होने पर ३२ तोला शहद मिला कर अवलेह तैयार करे। इस अवलेह को रोगी का बलाबल विचार १ तोले से २ तोले तक गरम (गुनगुने) जल के साथ क्षयरोगी को दे। यह अवलेह उस अवस्था में अति लाभ देता है, जब कि कफ खांसी की अधिकता हो, दस्त साफ न होता हो, और अग्नि मन्द हो।

बलादिघृत—खिरेटी, गोखरू, कटेरी की जड़, पृष्ठपर्णी, शालपर्णी, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, मोथा, त्रायमाण, जवासे की जड़, बड़ी कटेरी, हरड़, कचूर, मुनक्का, पोहकरमूल, मेदा आंवला ये सब औषधियां दश २ तोले लेकर ८॥ सेर पानी में औटाओ जब २= सेर रहे तब छान कर उसमें दूध गाय का २= सेर और घी १- सेर डाले और भूमि आंवला, कचूर मुनक्का, पोहकरमूल, मेदा, आंमले साढ़े तीन तीन तोले ले कल्क बना घृत सिद्ध करे। इस घृत के सेवन से ज्वर, क्षय, कास शिर और पसवाड़े की दर्द दूर होता है।

जीवंत्यादिघृत—जीवन्ती, मुलेठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, कटेरी की जड़, गोखरू, खिरेटी, नीलोफ़र, भूमिआंवला, त्रायमाण, जवासेकीजड़, पीपलछोटी ये सब औषधियां पांच २ तोला ले चार सेर जल में औटावे जब १ सेर रहे तब छानकर बकरी का दूध २ सेर दही १ सेर घी एक सेर मिलाकर पकावे जब घृतमात्र शेष रहे तब छान कर रक्खे। यह घृत क्षय रोग के ११ उपद्रवों को दूर करता है तथा नस्य लेने से शिर रोग दूर करता है।

कोलाद्य घृत—बेर की छाल का रस १ सेर, घृत एक सेर, दूध आधसेर, और वायविडंग, दारुहल्दी, दालचीनी, अखरोट, खजूरा, फालसे, मुनक्का, मुलेठी, पीपल छोटी, ये सब दो २ तोले ले कल्क बनाकर मिला पकावे जब घृत मात्र शेष रहे तब छान कर रक्खे। इस से खांसी कफ के साथ रक्त का आना स्वरभेद, श्वास, ज्वर नष्ट होते हैं।

गोक्षुरादिघृत-गोखरू, जवासे, शालपर्णी, पृष्नपर्णी, मुद्गपर्णी माषपर्णी, खिरेटी, पित्तपापड़ा, एक एक छटांक पानी ४ सेर में औटाओ। जब आध सेर पानी शेष रहे तब छान कर कचूर, पोहकरमूल, पीपल, त्रायमाण, भूमिआंवला, चिरायता, कुटकी, सारिवा, ये सब एक २ तोला ले। इन औषधियों का कल्क बनावे। और घृत एक सेर दूध २ सेर डाल कर पकावे जब घृत मात्र शेष रहे तब छान कर रक्खे। इस घृत से ज्वर, दाह, श्वास, पसली और मस्तक का शूल आदि क्षय के उपद्रव दूर होते हैं।

नोट:—कोलाद्यघृत में बेर की छाल का रस लिखा है उस के बनाने की विधि यह है कि एक सेर छाल को चार सेर पानी में औटाओ जब १ सेर रहे तब छान लो। और औटाते समय सज्जी, सुहागा शोध दो २ तोले डालना चाहिये।

एलादिघृत—इलायची छोटी, अजमोद, आमले, हरड़, बहेड़ा, खैर, नीम, बिजे शाल, (खैर से शाल तक चारों का सार लेना चाहिये सार न मिले तो छाल लेना) वायविडंग, भिलाये, चित्रक, त्रिकुटा, मोथा, गोपीचन्दन, ये सब आठ आठ पल ले सोलह गुने जल में पकावे। जब सोलवां भाग शेष रहे तब छान कर एक सेर घी डाल कर पकावे जब घी मात्र शेष रहे तब छान कर २ सेर शहद, छः छटांक वंसलोचन का चूर्ण, और एक सेर चौदह छटांक मिश्री, मिलाकर रई से अच्छी प्रकार मथ कर एक रस करले। यह घी दो तोले दूध के साथ खिलावे इसके सेवन करने से यक्ष्मा रोग दूर होता है। इस से बल, वीर्य्य बढ़ता है। सुश्रुतोक्त यह घृत परम रसायन है।

द्राक्षादिघृत—मुनक्का काली एक सेर, मुलेठी आध सेर, जौ कुट कर ६ सेर पानी में औटाओ जब १॥ सेर रहे छान कर उसमें मुलेठी ४ तोला मुनक्का ५ तोला पीपल छोटी ८ तोला का कल्क बना घी १ सेर दूध ४ सेर डाल पकावे। जब घी मात्र शेष रहे तब छान कर मिश्री आध सेर को पीस कर छने भये घी में मिलावे यह द्राक्षादि घृत क्षय, उरः क्षत, खांसी, कफ नाशक और बल वर्धक है।

छागलाद्यघृत—बकरे का मांस (खस्सी बकरा) ६। सेर १६ सेर जल में पकावे जब ४ सेर बाकी रहे तब एक सेर घी जीवनीयगण की औषधियां छटांक २ भर ले कल्क बना कर, पकावे जब घृत मात्र शेष रहे तब छान कर शहद पांव भर, मिलावे। यथा शक्ति मात्रा देवे। इस से क्षय, उरःक्षत, कास श्वास, पार्श्वशूल, अरुचि, स्वरभंग, हृदयरोग दूर होते हैं जो लोग

विलायती मछली का तैल सेवन करना पसन्द करते है वे इस आयुर्वेदीय घृत को सेवन करें अनुभव से जानागया है कि यह घृत मछली के तेल से अधिक बल वर्धक और क्षयरोग नाशक है।

चन्दनादि तैल— चन्दन सफेद, नेत्रवाला, नख, कूट, मुलेठी, मजीठ, पद्माख, खार छबीला, खस, देवदार, कायफल गंधेल घास (पूतकेशर) तेजपात, इलायची छोटी, बालछड़, फकोल, फूलप्रयंगु, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, सारिवा दोनो, कुटकी, लौंग, केशर अगर, दालचीनी, रेणुका, ये प्रत्येक तीन २ तोला और दही का तोड़ बीस सेर तेल ५ सेर लाख का रस ५ सेर, सब को एकत्र कर पकावे जब तेल मात्र शेष रहे तब छान ले इस तैल के मर्दन से बल बढ़ता है शरीर कान्तिवान होता है सब रक्त पित नष्ट होते है। धातुओं में प्रविष्ठ हुआ ज्वर बाहर निकलता है।

चन्दनादि तैल—में जो लाख का रस लिखा है वह इस प्रकार बनाना चाहिये कि लाख २॥ सेर मजीठ आधपाव सुहागा आध पाव लोध आध पाव बेरकी पत्ती ऽ= सब को जौकुट कर बीस सेर पानी में औटावो जब ५ सेर रहे छान लो यही ल व कारस है।

छागलाद्यघृत—में जोजीवनीयगण है उसकी औषधियां यह है जीवक, ऋषभक, मेदा, काकोली, मुलेठी मापपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक के अभाव में बिलाई कंदलोचन मेदा के अभाव में असगंध और काकोली के अभाव में सितावर लेनी चाहिये।

अश्व गन्धादि तैल — असगंध, खिरेटी, लाख, ये तीनों एक २ सेर ले जौकुट कर एक द्रोण (१६ सेर) पानी में औटावे। जब चौथाई पानी शेष रहे तब छान कर तैल तिलका १॥ सेर द ही का तोड़ ६ सेर और असगंध, हल्दी, दारुहल्दी, रेनुका, कूट, मोथा, चन्दन, देवदार, कुटकी, सितावर, लाख, मूर्वा, पीपरामूल मजीठ, मुलेठी, खस, सारिवा, ये प्रत्येक औषधियां पौने दो दो तोले ले कल्क बनाकर सब को अग्नि पर रख पकावे जब तैल मात्र शेष रह जावे छानले। इस तैल की मालिश से यक्ष्मा, ज्वर, कास, श्वास, दूर होते हैं धातुओं की वृद्धि होती है।

लक्ष्मी विलास तैल—इलायची, चन्दन, रास्ना, लाख, नख, कपूर, कंकोल, मोथा, खिरेटी, दालचीनी, हल्दी, पीपल छोटी, अगर, तगर, जटामांसी, कूट ये प्रत्येक औषधियां एक २ तोला और काली अगर ३ तोला ले, डमरू यन्त्र से तैल निकाल ले। यह तैल सुगंधयुक्त है पान में लगाकर सेवन करने से कफ को दूर कर जठराग्नि को दीप्त करे और शरीर से मालिश करने पर क्षय, बवासीर को नष्ट कर स्त्री पुरुषों में प्रीति उत्पन्न करे।

द्राक्षारिष्ट—मुनक्का २००तोले ले ३२ सेर पानी में औटावे जब ८ सेर पानी शेष रहे तब छान कर १२॥ सेर गुड़ डाले और दालचीनी, इलायची छोटी, तेजपात, नागकेशर, फूल प्रियगु, काली मिर्च, पीपर छोटी, वायविडंग, ये आठ औषधियां चार २ तोले डाल कर चिकने बासन में भर मुख बन्द कर एक मास रक्खा रहने दे। १ मास पश्चात साफ कर बोतलों में भरले। यह अरिष्ट कफ को निकालने वाला, फेंफड़ों को साफ, और पुष्ट करने वाला, काम नाशक, बल वर्धक, और क्षय नाशक है।

द्राक्षारिष्ट—में अनेक वैद्य धाय के फूल, मुनक्कों से चौथाई भाग डालते हैं

बब्बूलारिष्ट—बबूल की छाल २ तुला (अर्थात् १२॥ सेर) को जोकुट कर ६४ सेर पानी में औटाओ, जब १६ सेर रहे छान कर १८॥ सेर गुड़ डाले और धाय के फूल ६४ तोले पीपल छोटी ८ तोले, तथा जाय फल, कंकोल, लौंग, इलायची छोटी, दालचीनी, तेजपात नागकेशर, काली मिर्च, ये सब औषधियां चार २ तोले ले। सब को चिकने बासन में भर कर मुख बन्द कर एक मास रक्खा रहने दे। १ मास पश्चात साफ कर बोतलों में भरले यह अरिष्ट– कफ को निकालने वाला, दस्त को बांधने वाला कास नाशक है।

दशमूलारिष्ट—दशमूल २०० तोले चीते की छाल १०० तोले पोहकर मूल १०० तोले लोध ८० तोले, गिलोय ८० तोले, आंमले ६४ तोले, जवासे की जड़ ४८ तोले खैरसार ३२ तोले, बिजेसार ३२ तोले हड़काबक्कल ३२ तोला कूट, मजीठ देवदार, बायबिड़ंग, मुलेठी, भारंगी, कैथ, बहेड़े का बक्कल, सांठीकीजड़, चव्य, बालछड़, प्रियंगु, सारिवा, कालाजीरा, निशोथ, रेनुका, बाय सुरई, पीपलछोटी, सुपारी, कचूर, हल्दी, सौंफ, पदमाख, नागकेशर, मोथा, इन्द्रजौ, काकड़ासिंगी, ये औषधियां आठ २ तोले और अष्टवर्ग ६४ तोले ले, सबको जौ कुटकर अठगुने जल में क्वाथ करे जब चतुर्थांश रहे। तब छानले, फिर मुनक्का २५६ तोले ले चौगुने जल में पचावे जब चतुर्थांश शेष रहे तब छान कर ऊपर के क्वाथ में मिलादे। और धाय के फूल १२० तो० शी- शतचीनी, खस, चन्दन सफेद, जायफल, लौंग दालचीनी, इला यची छोटी, तेजपात, नागकेसर, पीपलछोटी, ये रूप आठ आठ तोले और कस्तूरी ४ माशे डालकर चिकने बासन में भर, मुख बन्दकर एक महीना धरा रहने दे पश्चात् छानकर निर्मली डाल साफ कर बोतलों में भरले यह अरिष्ट वात प्रधान क्षयके लिये तथा नज़- ला प्रतिश्यायके लिये अति लाभ दायक है तथा बल वर्धक है।

वांसारिष्ट—बांसे के पत्तों का स्वरस १०० तोला मृत-संजीवनी सुरा १०० तोले मुलेठीकासत्व २ तोला कपूर १ तोला अफीम १ तोला भारंगी १ तोला बहेड़ेका बक्कल २ तोला लौंग २ तोला जायफल १ तोला इलायची छोटी २ तोला) मिर्चकाली १ तोला तालीसपत्र २) काकड़ासिंगी १) मिश्री ४० तोला इन सब औषधियों को जौ कुट कर चिकने बासन में भर मुखबन्दकर १ महीना रक्खा रहने दे। पश्चात् छान कर साफ करले यह अरिष्ट बढ़े हुये कफ को नष्ट कर खांसी को दूर करता है तथा क्षय, ज्वर, प्रतिश्याय को नष्ट करता है।

चित्तचन्द्रासव—मोथा, मिर्चकाली, चव्य, चीते की की छाल, हल्दी, वायविडङ्ग, आमले, लव, क्षारद्वयीला, सुपारी, सोंठ, तेजपात, धर्मतिड़क, चन्दन सफेद, तगर, बालछड़, देवदारु, दालचीनी, गोंठी, नागकेसर, ये प्रत्येक औषधियां आठ २ माशे ले और धायके फूल ४० तोला मुनक्का ८० तोला गुड़पुराना १५ सेर जल २६ सेर डाल कर चिकने बासन में भर मुख बन्द कर एक मास रक्खा रहने दे पश्चात छान साफ कर बोतलों में भर रक्खे। यह चित्त चन्द्रासव सिद्धभैषज्यमणिमाला में मुद्रित है और कफ कास क्षय नाशक और बलवर्धक है।

वांसारिष्ट—भैषज्यरत्नावली में लिखा है। किन्तु इस में मृतसंजीवनी सुरा और वांसेका स्वरस आदि २–१ औषधियां हैं पर हमारे औषधालय में अपनाक विशेष औषधियों द्वारा बनाया जाता है वही सर्व साधारण के लाभ के लिये प्रकाशित कर दिया है वैद्य महानुभावों से प्रार्थना है कि यह वांसारिष्ट बना अपने रोगियों को दे इस के लाभ को देखें। मृतसंजीवनी सुरा प्रसिद्ध है ... आदि ... है

मृगांकपोटलीरस—पारा १ भाग स्वर्ण के वर्क १ भाग मोती २ भाग गंधिक शुद्ध २ भाग, सुहागा चौथाई भाग। प्रथम पारा और स्वर्ण के वर्क घोटे जब स्वर्ण के कण न चमकें तब मोती डाल कर घोटे जब खूब बारीक हो जावे तब गंधिक सुहागा डाल कर घोटे और जब सब एक हो जावे तब कांजी डालकर दो पहर घोट कर टिकिया बना सुखाने पश्चात् सराव सम्पुट कर लवण से पूर्ण किये हुये बर्तन के बीच में रख ८ पहर की अग्नि दे स्वांग शीतल होने पर निकाले। यह मृगांक पोटलीरस उस अवस्था में देना चाहिये जब कि क्षय, ज्वर, श्वास मन्दाग्नि, संग्रहणी, के साथ में निर्बलता अधिक हो। उस समय देने से बड़ा लाभ देता है।

स्वर्णमालतीबसंत—स्वर्ण के वर्क, १ माशा मोती २ माशा काली मिर्च भुनी भई ३ माशा शुद्ध सिंगरफ ४ माशा खर्पर शुद्ध ८ माशा (अभाव में यशद भस्म) गाय की लोनी ६ माशा सब को खरल कर बारीक करले पश्चात नीबू का रस डाल खरल करे। जब तक गाय की लोनी की चिकनाई नष्ट न हो जावे तब तक नीबू का रस डाल घोटता रहे। जब चिकनाई न रहे तब टिकिया बना सुखाले। यह सर्व प्रकार के ज्वर को क्षय को श्वास कफ को नष्ट कर बल बढ़ाती है।

बसंत कुसुमाकर—प्रवालभस्म, रससिन्दूर, मोती, अभ्रक भस्म चार चार माशे, रौप्यभस्म, स्वर्णभस्म, दोदो माशे, लोह-भस्म, नागभस्म, बंगभस्म तीन तीन माशे ले। सब को मिला खरलकर अडूसे के पत्तों का स्वरस, हल्दी का क्वाथ, ईख का स्वरस

स्वर्णमालती बसंत में आज कल अनेक वैद्य अच्छा व असली खर्पर न मिलने से शुद्ध यशद भस्म डालते हैं।

कमल के फूलों का स्वरस, मालती के फूलों का स्वरस, केला की जड़ का स्वरस, अगर का क्वाथ, चन्दन सफेद का क्वाथ इन औषधियों की अलग २ सात २ भावना देवे। यह बसंत कुसुमाकर रस उस अवस्था में अति लाभ देता है जब कि क्षय के साथ वीर्य विकार हो, कास के साथ कफ की अधिकता हो, बलहीन हो।

राजमृगाङ्करस—पारे की भस्म (रस सिन्दूर) ३ भाग स्वर्ण भस्म १ भाग ताम्रभस्म १ भाग मनसिल २ भाग शुद्धगंधिक २ भाग हरताल २ भाग सब को बारीक चूर्ण कर पीली बड़ी कौड़ियों में भर, बकरीकादूध और सुहागा पीस कौड़ियों का मुख बन्दकर सुखावे। सुखाने के पश्चात् मट्टी के बर्तन में रख उस का मुख बन्द कर गजपुट में फूक दे स्वांग शीतल होने पर मट्टी के बर्तन को अलग कर कौड़ियों सहित रस को पीसले यही राजमृगांकरस है। अनुपान कालीमिर्च पीपल, घी, शहद, यह रस कफप्रधान क्षय के लिये अति लाभदायक है।

अमृतेश्वर रस—पारे की भस्म (रस सिन्दूर) गिलोय का सत्व, लोहभस्म, इन तीन औषधियों को समान भाग मिलाने से ही अमृतेश्वर रस बनता है यह रस उन अवस्था में जब कि क्षय के साथ पइत विकार हो लाभ देता है।

हेमगर्भ पोटली रस—शुद्ध पारा एक तोला स्वर्ण के वर्क ३ माशा गंधिक शुद्ध २॥ तोला ले। कचनार के रस में खरल कर गोला बनाय सराव सम्पुट में बन्दकर कपड़ मिट्टी कर सुखाकर भूधर यन्त्र में पचावे स्वांग शीतल होने पर निकाल उसके समान शु० गंधिक मिला अद्रक के स्वरस और चित्रक की जड़

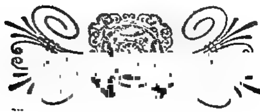
के क्वाथ में भावना देकर सुखाकर पीसले फिर पीली बड़ी कौड़ियों में भर सब औषधियोंसे आधा भाग सुहागो और चौथाई भाग सींगिया ले दोनों को थूहर के दूध में पीस कौड़ियों के मुखों को बन्द कर दे। और एक हांडी ले उस में आधा चूना (कलई) भर कौड़ियों को रख फिर चूना भर हांडी को भर दे और हांडी का मुख बन्दकर गजपुट की अग्नि दे जब शीतल हो जावे तब सावधानी से हांडी में से कौड़ियों को निकाल खरल कर शीशी में भर रखे। यह हेम गर्भ पोटली रस कफ प्रधान क्षयमें दे। हेम गर्भ पोटली रस की सेवन विधि व पथ्य बृ० लोकनाथ रस के समान है।

तथा इस में भी विशेषता यह है कि ३ दिन अधिक निमक न खाय जब इस औषधि से उलटी (वमन) होने लगे तब गिलोय का क्वाथ शहत डाल के देवे इस से उलटी आना बन्द हो जाती है। कफ का अधिक प्रकोप हो तो शहद और अद्रक का रस मिला कर दे दस्त होने लगें तो भांग को घी में भून दही मिलाकर देवे, तो दस्त बन्द हो। यह रस कफ प्रधान तथा वायु प्रधान क्षय को नष्टकर अग्नि को प्रदीप्त करता है।

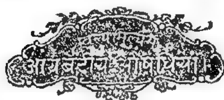
बृ० लोकनाथरस—शुद्ध पारा २ भाग शुद्धगंधक २ भाग ले कज्जली कर पारे से चौगुनी पीली कौड़ियों को ले उन में कज्जली भर दे। और सुहागा १ भागले गौके दूध में पीस कौड़ियों के मुख को बन्द करदे फिर शंख के टुकड़े ८ भागले और मिट्टी के दो सकोरा ले एक में चूना भर के उस के ऊपर शंख के टुकड़ा रख कौड़ी रख ऊपर से फिर शंख के टूक रख फिर चूना दाब २ के भर सकोरा ढक कपड़ मिट्टीकर एक हाथ के गड्ढे में आरने कण्डा भर बीच में सम्पुट को रख अग्नि दे। स्वांग शीतल होने पर चूना से कौड़ियो को व शंखको निकाल खरल में घोटकर

शीशी में भरले। इस बृ० लोक नाथरस की मात्रा १ एक रत्ती से ६ रत्ती तक दे। १९ कालीमिर्च के चूर्ण में मिला वात प्रधान क्षय में घी के साथ पित्त प्रधान क्षय में मक्खन के साथ और कफ प्रधान क्षय में शहद के साथ दे। तथा अतिसार, क्षय, अरुचि, संग्रहणी मन्दाग्नि खांसी, श्वास, गोला, इतने रोगों में भी इस रस को दे। इस को सेवन कर घी भात के ३ ग्रास खाय, फिर शय्या पर बिना बिछौना के एकक्षण मात्र चित्त लेट जावे। खट्टे पदार्थ त्याग कर घृत से भोजन करे। तथा कराम मीठा दही भोजन में खाय। सायंकाल में जब भूख लगे तब दूध भात खाय। तिल आमले इनका कल्क करके शरीर में मालिश कर के स्नान करे। स्नान को जल सुहाता २ गरम लेवे। तेल का स्पर्श भी न करे। पथ्य से रहे। शुभ दिन शुभ वार पूर्ण तिथि शुक्ल पक्ष और जिस दिन रोगी को अच्छा चन्द्रमा हो उस दिन लोक नाथ रसकी पूजा करे। कन्या को भोजन करा, स्वर्ण आदि का दान दे, लोक नाथ रस का सेवन करे। और विशेष विवरण बृहद्निघंटुरत्नाकर, शारंगधर आदि ग्रन्थों में देखिये।

❋ समाप्त ❋



श्रीमान् लाला नारायणदास राधावल्लभ जी वैद्यराज के श्रीधन्वन्तरि औषधालय की



नाम औषधि	तोल		मूल्य
रध्वज स्वर्णघटित षड्गुण बलजारित	१ तोला	...	१५)
र्ण सिन्दूर ...	१ तोला	...	६)
लसिन्दूर ...	२॥ तोला	...	५)
सिन्दूर ...	१ तोला	...	४)
गोदभस्म (स्वर्ण मोती की मिश्रित भस्म)	६ माशे	...	२५)
र्णभस्म-(पारदयोग से निरुथ)	३ माशे	...	१५)
भस्म-पारद योग से ...	१ तोला	...	४)
,, हरिताल योग से कृष्ण वर्ण	२ तोला	...	४)
भस्म-पारद योग से	२ तोला	...	२)
,, गंधिक योग से कृष्ण वर्ण	५ तोला	...	१)
दन्ती हरिताल भस्म ...	५ तोला	...	१)
द भस्म (दरदयोगेन) ...	५ तोला	...	२)
,, साधारण ...	१० तोला	...	२)

अभ्रक भस्म (शतपुटी)	...	५ तोला	...	५)
" (२५ पुटी)	...	१० तोला	...	४)
वंगेश्वर-(हरिताल योग से कृष्णवर्ण)		५ तोला	...	३)
वंगभस्म श्वेत	...	१० तोला	...	३)
नागेश्वर-(मनशिल योग से कृष्णवर्ण)-		५ तोला	...	३)
नागभस्म-पीतवर्ण	...	१० तोला	...	२॥)
त्रिवंगभस्म-(नाग, यशद, वंग की मिश्रित भस्म)	...	५ तोला	...	२॥)
स्वर्ण वंगभस्म	...	१ तोला	...	२)
यशदभस्म	...	१ तोला	...	२)
प्रवालभस्म (मूंगाकी भस्म)		५ तोला	...	२)
मंडूर (कीट) भस्म (रक्तवर्ण)		५ तोला	...	१)
" कृष्णवर्ण		१० तोला	...	२)
मालतीवसंत-पारदभस्ममिश्रित		१ तोला	...	६)
वसंत कुसुमाकर	...	३ माशे	...	५)
चन्द्रप्रभावटी-(लोहभस्मशिलाजीत मिश्रित)		२० तोला	...	४)
वृ० योगराजगुग्गुल (सप्तधातुमिश्रित)		२० तोला	...	५)
योगराजगुग्गुल	...	५०० गोली	...	१)
प्रवाल पंचामृतरस	...	५ तोला	...	१।

उपरोक्त औषधियों के अतिरिक्त और भी धातु उपधातुओं की भस्म, रस, गुटिका उपरत्न आदि भी तैयार हैं।

अवलेह

च्यवनप्राश्य (कास, क्षय, रक्त पित्त,नाशक) १ सेर ... ३

कुशावलेह, वांसावलेह कूष्मांडावलेह कंटकार्यावलेह आद्र कावलेह, प्रत्येक तीन २ रुपये सेर।

अरिष्ट और आसव



मृगमदासव (सन्निपात-विसूचिका रोग नाशक) पावसेर ४)

लोहासव (पांडु-शोथ-गुल्म आदि नाशक) एकसेर ३)

कर्पूरासव (विसूचिका शूल-आदि नाशक) १ सेर ५)

अहिफेनासव (प्रवाहिका-अतीसार विसूचिका आदि नाशक) पावसेर ३)

कुमारी आसव (गुल्म, स्त्रीयों के ऋतुदोषादि ना०) पावसेर २॥)

कनकासव (कास, श्वास, कफ आदि नाशक) ५ सेर २)

उशीरासव (रक्त पित्त-क्षय-आदि नाशक) ५ सेर ७)

दशमूलासव (प्रसूतदोष नाशक-बलवर्धक) २ सेर ३)

चन्दनासव (मूत्रविकार, मूत्रकृच्छ्र-नाशक) ५ सेर ४॥)

वासारिष्ट (कास, श्वास, क्षय नाशक) १ सेर ५)

अशोकारिष्ट (प्रदर स्त्री रोग नाशक) ५ सेर ३)

सारस्वतारिष्ट (स्वर्णयुक्त) मस्तिष्कशक्ति स्मृतिशक्ति वर्द्धक और वीर्य दोष नाशक पावसेर ५)

द्राक्षारिष्ट (क्षय-कास-श्वास ज्वर नाशक) ३ सेर २७)

उपरोक्त आसव अरिष्टों के अतिरिक्त और भी आसव-अरिष्ट तैयार रहते हैं जैसे अमृतारिष्ट, कुटजारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट आदि अरिष्ट आसवों के साथ जो बोतलें या टीन के डिब्बे आदि होंगे उन का मूल्य ग्राहकों को अलग देना होगा।

अभ्रक भस्म (शतपुटी)	...	५ तोला	...	५)
,, (२५ पुटी)	...	१० तोला	...	४)
वंगेश्वर-(हरिताल योग से कृष्णवर्ण)		५ तोला	...	३)
वंगभस्म श्वेत	...	१० तोला	...	३)
नागेश्वर-(मनशिल योग से कृष्णवर्ण)-		५ तोला	...	३)
नागभस्म-पीतवर्ण	...	१० तोला	...	२॥)
त्रिवंगभस्म-(नाग, यशद, वंग की मिश्रित भस्म)	...	५ तोला	...	२॥)
स्वर्ण वंगभस्म	...	१ तोला	...	२)
यशदभस्म	...	१ तोला	...	२)
प्रवालभस्म (मूंगाकी भस्म)		५ तोला	...	२)
मांडूर (कीट) भस्म (रक्तवर्ण)		५ तोला	...	१।)
,, कृष्णवर्ण		१० तोला	...	२)
मालतीवसंत-यशदभस्ममिश्रित		१ तोला	...	६)
वसंत कुसुमाकर	...	३ माशे	...	५)
चन्द्रप्रभावटी-(लोहभस्मशिलाजीत मिश्रित)		२० तोला	...	५)
वृ० योगराजगुग्गुल (सप्तधातुमिश्रित)		२० तोला	...	५)
योगराजगुग्गुल	...	५०० गोली	...	१।)
प्रवाल पञ्चामृतरस	...	५ तोला	...	१।)

उपरोक्त औषधियों के अतिरिक्त और भी धातु उपधातुओं की भस्म, रस, गुटिका उपरत्न आदि भी तैयार हैं।

☞ अवलेह ☜

च्यवनप्राश (कास, क्षय, रक्त पित्त,नाशक) १ सेर... ३)

कुशावलेह, वांसावलेह कूष्मांडावलेह कंटकार्य्यावलेह आद्र-कावलेह, प्रत्येक तीन ३ रुपये सेर।

❀ अरिष्ट और आसव ❀



मृगमदासव (सन्निपात विशूचिका रोग नाशक)	पावसेर	५)
लोहासव (पांडु शोथ गुल्म आदि नाशक)	दससेर	३)
कपूरासव (विशूचिका शूल आदि नाशक)	१ सेर	५)
अहिफेनासव (प्रवाहिका अतीसार विशूचिका आदि नाशक)	पावसेर	३)
कुमारी आसव (गुल्म, स्त्रीयों के ऋतुदोषादि ना०)	पावसेर	२॥)
कनकासव (कास,श्वास,कफ आदि नाशक)	५ सेर	२)
उशीरासव (रक्त पित्त-क्षय आदि नाशक)	५ सेर	२)
दशमूलासव (प्रसूतदोष नाशक-पाचक)	२ सेर	३)
चन्दनासव (मूत्रविकार, सुजाक-नाशक)	५ सेर	२॥)
वासारिष्ट-(कास, श्वास, क्षय नाशक)	१ सेर	५)
अशोकारिष्ट(प्रदर स्त्री रोग नाशक)	५ सेर	३)
सारस्वतारिष्ट (सर्वंघटित) मस्तिष्क शक्ति स्मृतिशक्ति वर्धक और वीर्य्य दोष नाशक	आधसेर	५)
द्राक्षारिष्ट (क्षय कास-रक्तपित्त ज्वर नाशक)	२ सेर	२५)

उपरोक्त आसव अरिष्टो के अतिरिक्त और भी आसव अरिष्ट तैयार रहते हैं जैसे अमृतारिष्ट, कुटजारिष्ट, अभयारिष्ट आदि अरिष्ट आसवों के साथ जो बोतलें वा टीन व डिब्बेआदि लगेंगे उन का मूल्य ग्राहकों का पृथक् देना होगा।

❀ तैल और घृत ❀



नारायण तैल-(सर्व प्रकार के वात रोग नाशक)	१ सेर	३)
विषगर्भ तैल (वायु विकार नाशक)	२ सेर	४)
चन्दनादि तैल(क्षय कास-ज्वर नाशक	१ सेर	३)
मोम का तैल (केवल मोम का प्रसिद्ध तैल)	पावसेर	२॥)
लाक्षादितैल (जीर्णज्वर,विषम ज्वर नाशक	२ सेर	४)
त्रिफलादिघृत (नेत्ररोग नाशक)	आधसेर	३)
सारस्वतघृत (बुद्धिवर्धक)	आधसेर	४)

उपरोक्त तैलों घृतों के अतिरिक्त और भी तैल तैयार हैं जैसे कुमारी तैल, षड्बिन्दु तैल, किरातादि तैल, मिर्चादितैल, ब्राह्मीघृत, अग्निघृत, धात्रीघृत आदि।

❀ चूर्ण ❀

सुदर्शन चूर्ण (ज्वर नाशक)	१ सेर	३)
निम्बादि चूर्ण (ज्वर नाशक)	१ सेर	३)
वृ॰ गंगाधर चूर्ण (अतीसार-ग्रहणी नाशक)	१ सेर	२)
जातीफलादि चूर्ण(क्षय ग्रहणी आदि नाशक)	पावसेर	१)
लवण भास्कर चूर्ण(मन्दाग्नि अजीर्ण आदि ना॰)	आधसेर	२)

उपरोक्त चूर्णों के अतिरिक्त और भी चूर्ण तैयार हैं।



❀ सत्व-क्षार-द्राव ❀



गिलोय का सत्व	...	५ तोला	...	१)
अपामार्ग क्षार	...	२० तोला	...	१॥)
यवक्षार	...	२० तोला	...	२)
इमली का क्षार	...	२० तोला	...	२)
वज्रक्षार	...	५ तोला	...	१)
शंखद्रावः	...	२ तोला	...	२॥)

इन के अतिरिक्त कटेरी, ढाक, आक, तमाखू, तिल, कदली, चित्रक आदि के क्षार तैयार रहते हैं।

वनौषधियां

दशमूल	...	५ सेर	...	७)
माषपर्णी	...	आधसेर	...	१)
ब्राह्मी	...	एक सेर	...	४)
अनन्तमूल (सारिवा)	...	२॥ सेर	...	२॥)

इन के अतिरिक्त और भी वनौषधियां मिलती हैं।

नोट—जिस तोल का मूल्य लिखा है उस से कम थोक भाव में नहीं भेजी जाती हैं।